रामकुमार भुवालका स्मारक ग्रन्थमाला—पुष्प : १

मुंशी देवीप्रसाद कृत

मीरांबाई का जीवनचरित्र

सम्पादक

ललिताप्रसाद सुकुल

प्रकाशक

बंगीय हिन्दी-परिषद्

कलकत्ता

रासपूर्णिमा,
सं० २०११ वि०
(सन् १९५४ ई०)

मूल्य
एक रुपया
चार आने
Price Rs.

दो शब्द

किसी भी महान जाति का जीवन निखरता है उसके साहित्य में; और अपनी सुकृतियों तथा कीर्ति की स्थिरता भी उसे प्राप्त होती है, साहित्य की भित्ति पर ही। साहित्यानुराग परिष्कृत और सुसम्पन्न जीवन का प्रधान लक्षण है। व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में भी यह सत्य निरन्तर देखा जा सकता है कि पतन के क्षणों में मनुष्य क्रमशः नाना प्रकार की संकीर्णताओं में जकड़ता जाता है और ठीक उसी के विपरीत अपने विकासकाल में वह उत्तरोत्तर औदार्य और समन्वय का प्रेमी बनता है। विकास की प्रवृत्ति की चेतना भी मनुष्य को सबसे अधिक साहित्य के कल्पतरु से ही मिलती है। यही रहस्य है विशुद्ध साहित्यिकों तथा साहित्यिक संस्थाओं के महत्व का।

मनुष्य का विविध प्रकार की आर्थिक, व्यावसायिक तथा राजनीतिक सफलताएँ प्राप्त कर लेना स्वयं एक पुण्य है किन्तु साथ ही अपने देश एवं राष्ट्र के साहित्य के प्रति अनुरागी होना उससे भी बड़ा पुण्य है। किसी समाज में ऐसे विशिष्ट व्यक्ति बहुत अधिक नहीं देखे जाते, किन्तु होते अवश्य हैं। श्री रामकुमारजी भुवालका हमारे विशाल नगर के ऐसे ही गिने-चुने व्यक्तियों में से एक हैं। परम कुशल व्यवसायी, समाज-सेवक, राष्ट्रकर्मी होने के साथ ही भारती के भी सच्चे सेवक हैं। ऐसे व्यक्ति का जीवन कितना व्यस्त होना चाहिए, इसकी कल्पना कठिन नहीं; लेकिन फिर भी वे साहित्य की सेवा में जिस रूप में भी उनसे संभव होता है, पीछे नहीं रहते। 'बंगीय हिन्दी परिषद्' के वे एक विशिष्ट सदस्य हैं, उसकी सर्वतोमुखी उन्नति में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'परिषद्' के प्रति उनके सक्रिय अनुराग एवं उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर परिषद् ने सर्वसम्मति से निश्चय किया कि भारती की सर्वांगीण उन्नति में रत श्री रामकुमारजी भुवालका के नाम पर ही परिषद् के द्वारा एक उपयोगी ग्रन्थ-माला का प्रकाशन हो। मुन्शी देवीप्रसाद कृत 'मीरांबाई का जीवन चरित्र' हिन्दी साहित्य की एक बहुमूल्य कृति है। उसका सुसम्पादित यह संस्करण उक्त ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है जो इस वर्ष की मीरा जयन्ती के अवसर पर राष्ट्रवाणी के कोष को समर्पित किया जा रहा है।

रामसेवक पाण्डेय, मन्त्री

प्राक्कथन

यदि आत्मा अविभेद्य, अविच्छिन्न और अमर है तो निश्चय ही जीवन-सरिता को भी अजस्र और अविच्छिन्न मानना ही पड़ेगा। दार्शनिकों ने मृत्यु अथवा विनाश की परिधि, 'रूप' में ही बाँधी है, लेकिन स्थूल रूप ही तो जीवन नहीं है। वह तो चैतन्य जीवन का सामयिक आधार मात्र है। यह सत्य चिर और शाश्वत है। तब आत्मचिन्तन और आत्म-जागरण में सतत प्रयत्नशील विभूतियों की जीवन-कथा के साथ मरण की अथवा विनाश की कल्पना ही कैसी ?

भारतवर्ष का तथाकथित राजनीतिक इतिहास भले ही ऐसी अमर विभूतियों के चिर-स्मरणीय वृत्तों से शून्य हो किन्तु जहाँ तक इस देश के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इतिवृत्त का सम्बन्ध है वह तो ऐसे ज्वलन्त चरित्रों की अमर-कीर्त्ति से पग-पग पर ओत-प्रोत ही मिलता है। प्रायः सभी युगों में प्रत्येक देश की इतिहास के नाम पर मिलने वाली सामग्री वहाँ के विविध शासकों या उनके आस-पास के रहनेवाले कुछ व्यक्तियों के विवरणों की संकीर्ण सीमा में ही आबद्ध मिलती है और शिक्षित वर्ग भी प्रायः उसी को इतिहास मानता चला आता है। परन्तु ऐसी सामग्री किसी भी देश अथवा वहाँ के निवासियों का वास्तविक जीवन-चित्र उपस्थित करने में असमर्थ होती है। प्रश्न स्वाभाविक है कि स्मरणीय अथवा सुरक्षणीय क्या है और क्यों ? उत्तर भी कठिन नहीं। जो 'विगत', वर्त्तमान और भावी जीवन को नव-प्रेरणा दे सके वही सुरक्षणीय है, और वही है चिरस्मरणीय।

किसी देश के शासकवर्ग में यदा-कदा ही ऐसे नाम ढूंढ़े मिलते हैं, जिनके चरित्र उपर्युक्त कसौटी पर स्मरणीय अथवा सुरक्षणीय कहे जा सकें। लेकिन फिर भी इतिहास के नाम पर इन्हीं को स्थान मिलता रहा है। कारण स्पष्ट है कि इस प्रकार के इतिहास के लेखक अधिकांश शासन के वित्त-भोगी व्यक्ति थे। किन्तु फिर भी अमर विभूतियाँ इन इतिहासकारों से अछूती रह कर भी मानवता के द्वारा सदा सुपूजित और समादृत होतीं ही रहीं। इस प्रकार जन-साधारण के मानसपटल पर अंकित ये सम्मुज्वल चरित्र युगों से केवल सत्प्रेरणा के स्रोत ही नहीं रहे हैं, वरन् इनके चरित्रों में, इनकी उक्तियों में, और इनसे सम्बद्ध वातावरण में ही प्राप्त होता रहा है, वास्तविक भारतीय-जीवन और चिन्ता-जगत का इतिहास।

मीरांबाई का चरित्र उपर्युक्त मान्यता का एक ज्वलन्त उदाहरण है। यों तो भारत का कोना-कोना इनकी सुकीर्त्ति से आलोकित है, आए दिन हमारे देशवासी एवं विदेशी भी, इनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते ही रहते हैं। किन्तु; आज जैसा प्रत्यक्ष हो गया है, यह तो अपने काल के सर्व-प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित राज्यकुल की पुत्री और वधू भी थीं; फिर भी आश्चर्य, तो यह है कि सामन्तों के इतिहास-लेखक भी इनके सम्बन्ध में मौन ही हैं। जिस अप्रतिभ व्यक्तित्व के प्रशंसक और उपासक इतने अधिक हों, स्वाभाविक है कि उसके सम्बन्ध में अधिक जानने की उत्कण्ठा भी वैसी ही प्रबल और उतनी ही अधिक हो। इसी का परिणाम था कि राजस्थान निवासी मुन्शी देवीप्रसाद, मीरांबाई के प्रामाणिक जीवन-चरित्र की छानबीन में व्यस्त हो गए और उन्हीं के अध्ययन और अनुशीलन के फलस्वरूप सं० १९५५ में हिंदी साहित्य को प्राप्त हुआ "मीरांबाई का जीवन चरित्र।" आकार-प्रकार में भले ही यह रचना संक्षिप्त जान पड़े किन्तु इसका पन्ना पन्ना ऐतिहासिक गवेषणा का प्रतीक है। न जाने कितने तथ्य मीराबाई के व्यक्तिगत जीवन तथा उनके पितृ और श्वसुर कुल सम्बन्धी इस पुस्तक के द्वारा पाठकों को उपलब्ध करा दिए गए हैं। इस जानकारी का मूल्य केवल ऐतिहासिक ही नहीं है, वरन् इसकी पृष्ठभूमि पर मीराबाई के द्वारा, जो अमर सन्देश हमें प्राप्त हुए हैं, उनकी वास्तविकता और मार्मिकता के समझने में भी प्रचुर सहायता मिलती है।

यहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि हमारे साहित्य को ऐसी अमूल्य निधि भेंट करनेवाले भारती के सपूत एवं सच्चे सेवक मुन्शी देवीप्रसाद के जीवन-चरित्र का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। यूँ तो मुन्शी जी के पूर्वज मध्यप्रदेश में भूपाल रियासत के निवासी थे, किन्तु कालान्तर में परिस्थितियों वश इनके प्रपितामह राजस्थान चले आए। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर मुंशीजी का जन्म माघ सुदी १४ सं० १९०४ (१८४७ ई०) को अपने नाना के घर जयपुर में हुआ था। अपने समय के अनुसार इन्हें अरबी और फारसी तथा उर्दू की अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। ये बड़े प्रतिभावान थे, इनके जीवन क्रम के देखने से ज्ञात होता है कि सोलह वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने टोंक रियासत में नौकरी करना प्रारम्भ कर दिया था। संवत् १९४० में इनका सम्बन्ध जोधपुर दरबार से हो गया था और तब से लेकर प्रायः जीवनपर्यन्त ये विविध उच्च और उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर जोधपुर दरबार में ही रहे। लगभग चार वर्ष तक तो ये रियासत के न्याय-विभाग में मुन्सिफ रहे किन्तु उसके बाद से लेकर संवत् १९५९ तक इनका सम्बन्ध अनेक रूपों में 'मुहकमें-तवारीख'

तथा उसी प्रकार के अन्य विभागों से रहा। स्वभाव से ही इनकी प्रवृत्ति इतिहास की ओर अनुसंधानात्मक थी। इसीलिये ऐसे विभागों में जहाँ इन्हें भ्रमण और नवीन अथवा प्राचीन लोक-जीवन से परिचित होने का अवसर मिल सकता था इन्हें विशेष आनन्द मिलता था।

अरबी, फारसी और उर्दू के पंडित तो ये थे ही हिन्दी से भी इन्हें प्रगाढ़ प्रेम था। इनकी दृष्टि पैनी थी और सत्यासत्य विवेचन की शक्ति प्रबल थी। साथ ही देश और जातीय-गौरव की भावना भी इनमें कूट-कूट कर भरी थी। इन्हीं से प्रेरित होकर इन्होंने प्रारम्भ तो किया था उर्दू में कुछ इतिहास. नीति तथा स्त्री-शिक्षा से सम्बद्ध पुस्तकें लिख कर; किन्तु शीघ्र ही इन्होंने अनुभव से देख लिया कि हिन्दी का क्षेत्र अति व्यापक है और हिन्दी के माध्यम से ये प्राचीन राजस्थान की गौरवनिधि का वितरण अनायास ही बहुत अधिक विस्तार से कर सकेंगे। इसलिये इन्होंने हिन्दी में ही लिखने का संकल्प कर लिया। अपने दीर्घ जीवन-काल में इन्होंने लगभग पचास परम उपयोगी ग्रंन्थ भारती के कोष को अर्पित किए थे। अधिकांश रचनाएँ राजस्थान के ऐतिहासिक वृत्तों से सम्बन्धित हैं। किन्तु इनका अनुराग काव्य तथा अन्य कलात्मक और सांस्कृतिक विषयों में भी कम नहीं था। इनके द्वारा लिखी गई "कविरत्नमाला", "राजरसनामृत," "महिला मृदुवाणी", इत्यादि इसके प्रमाण हैं। इनके विस्तृत साहित्य को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनकी ज्ञान-पिपासा असीम थी और उत्साह अदम्य। इनकी मृत्यु जोधपुर में ही संवत १९८० में हुई थी।

"मीरांबाई का जीवन चरित्र" लिखकर निश्चय ही इन्होंने केवल एक अनुपम साहित्य-सेवा ही नहीं की, वरन् इसके मिस, यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि इन्होंने मध्यकालीन प्रतिष्ठित राज-परिवारों एवं जन-साधारण में प्रचलित धार्मिक साहित्य के क्रमबद्ध अध्ययन के लिए प्रशस्त राजमार्ग की स्थापना भी कर दी। इनकी यह कृति संवत् १९५५ में प्रकाशित हुई, और इतनी लोकप्रिय हुई कि कुछ ही दिनों में उसका संस्करण समाप्त हो गया। देश की जागरूक जनता में दिन-प्रति दिन मीराबाई के अध्ययन की रुचि का बढ़ना अनिवार्य था और स्थल-स्थल पर मुन्शीजी की कृति का उल्लेख भी अनिवार्य ही हो गया है। किन्तु यह दुःख की बात है कि लगभग तीस वर्षों से यह कृति अनुपलब्ध ही रही। आज यह आवश्यक हो गया है कि इतनी महत्वपूर्ण यह पुस्तक हिन्दी संसार को सरलता से उपलब्ध हो।

इसी पवित्र और सार्वजनिक सेवा की भावना से प्रेरित होकर "बंगीय हिन्दी परिषद्" ने यह निश्चय किया कि यह कृति प्रकाशित कर दी जाय। आज संवत् २०११ की रासपूर्णिमा को जो मीराबाई की जन्मतिथि है—यह कृति बंगीय हिन्दी परिषद् हिन्दी संसार को भेंट कर रही है। इस पुस्तक के सम्पादन में इसका पूरा ध्यान रखा गया है कि मुन्शी देवीप्रसाद जी ने, अपनी कृति में मीराबाई का चरित्र अपनी जिस भाषा में जिस क्रम से लिखा है, उसमें किंचित् मात्र परिवर्त्तन या संशोधन न किया जाय। मुन्शी जी के बाद मीराबाई, उनके काल तथा उनसे सम्बन्धित प्रचलित अनुश्रुतियों इत्यादि के विषय में अब तक जो-कुछ कार्य हो चुका है वह अलग से टिप्पणियों तथा परिशिष्टों के रूप में जोड़ दिया गया है ताकि यह नवीन प्रकाशन अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। मुन्शीजी की मूल कृति में, संभव है, कहीं-कहीं भाषागत विचित्रता दीख पड़े किन्तु उसको उसी रूप में रखने का भी एक प्रयोजन है कि यदि कोई विद्यार्थी उस समय की, अथवा उस अंचल की प्रचलित भाषा का अध्ययन करना चाहे, तो उसे भी सुविधा हो।

सौभाग्य से आज मीराबाई का प्रामाणिक चित्र भी प्राप्त है। उनके निवास स्थान आदि का भी सूत्र मिल गया है। इस नव प्रकाशन को अधिक पूर्ण बनाने के लिए उनके चित्र, एक उस समय के राजस्थान के मानचित्र के साथ, पुस्तक में संलग्न हैं।

आशा है हिन्दी संसार इस उपयोगी प्रकाशन का स्वागत करेगा।

रास-पूर्णिमा, संवत् २०११
१० नवम्बर, १९५४

—ललिताप्रसाद सुकुल

विषय-सूची

इन्हें न भूलें—

लाख लोक भय बाधाओं से विचलित हुई न वीरा,
वार गई, ब्रजरज पर मानिक मोती हीरा धीरा।
हरि चरणामृत कर वर विष भी पचागई गंभीरा,
नचा गई नटनागर को भी, नाची तो बस मीरा॥—मैथिलीशरण

'मीरांबाई का जीवन चरित्र' के रचयिता तथा अन्य अनेक ग्रंथों के लेखक

मुंशीदेवीप्रसाद

❀ श्री हरि ❀

॥ मीरांबाई का जीवन चरित्र ॥

नमो नमो श्री गिरिधर नागर ।
मीरां के प्रभु प्रेम उजागर ॥

❀ भूमिका ❀

हिन्दुस्तान में कम कोई ऐसी बस्ती होगी कि जहां किसी मर्द या औरत की जबान पर मीरांबाई का नाम न आता हो और बिरला ही कोई मन्दिर होगा कि जहाँ उनके बनाए हुए भजन और हरिजस न गाये जाते हों लेकिन इस पर भी उनका असली हाल लोगों को बहुत ही कम मालूम है जो न मालूम होने के बराबर है और जो कुछ भक्तमाल वगैरा में लिखा है वह तवारीखी सबूत और तवारीखी दुनियां से बहुत दूर पड़ा हुआ है जिसका सबब यही है कि जिन लोगों ने लिखा है उनकी ग़रज़ तवारीखी तहकीकात से नहीं थी उनका मतलब तो भगवत् भगतों के चरित्र लिखने से था सो उन्होंने उसको हाथ से नहीं जाने दिया जो बात उन्होंने सुनी या उनके जान्ने में ठीक मालूम हुई वह लिख ली इसी तरह करनल टाड ने भी सुनी सुनाई और अटकल पच्चू बातों पर भरोसा करके मीरांबाई को राणा कुंभाजी की राणी लिखने में गलती की है इससे जियादा गलत बात बाबू कारत्तिक प्रसाद ने मीरांबाई के जीवन

चरित्र ❀ में यह लिखी है कि मेड़ते के राठोड़ सरदार जैमलकी कन्या मीरांबाई ने सं० १४७५ में जन्म लिया था मगर इस ज़माने में की असली बातों की छानबीन जियादा होती है बात २ में हिन्दी की चिंदी निकाली और बाल की खाल खेंची जाती है ऐसी वैसी बातों से तसल्ली नहीं होती और जो तहक़ीक़ात की जावे तो जरूर कुछ न कुछ फ़र्क निकलता है और बाजे वक्त बहुत सी असली बातें भी ज़ाहिर हो जाती हैं ॥

हमने जो मीरांबाई का हाल मारवाड़ और मेवाड़ × में कि जहाँ

❀ यह जीवन चरित्र सं० १९५० में मुज्जफरपुर के नारायण प्रेस में छप गया है ॥

× मेवाड़ के महकमे तवारीख में भी जो महामहोपाध्याय कविराजा सावलदासजी के अधिकार में था मीरांबाई का पूरा हाल मोजूद नहीं है १ दफे कविराजा साहिबसे भी मैंने बहुत सी पूछताछकी थी जिसका जवाब उन्होंने सिर्फ इतना दिया कि "मीरांबाईका कोई सही हाल सिवाय इसके हमको मालूम न हुआ कि वे रावदूदाजीके पोते मेड़तिया राठोड़ रतनसिंघकी बेटी थीं और महाराणा सांगाजी के कँवर भोजराज को व्याही गई थीं जिनका इन्तकाल महाराणा की जिंदगी में होगया था और मीरांबाई के पास साध संत बहुत आते थे इसलिये राणां विक्रमाजीत उनको तंग करते थे" ॥

कविराजाजीके मरेपीछे उनके असिस्टेंट पण्डित गौरीशंकरजीसे कई महीनेतक लिखापढ़ी होतीरही तो उन्होंने भी यही लिखा कि "मीरांबाई का हाल जियादातर तो किस्सा कहानी है और वह सब जगह मशहूर है मीरांबाई महाराणां सांगा के दूसरे बेटे भोजराज को राणी और मेड़तेके रावदूदाजी के बेटे रतनसिंघकी बेटी थीं महाराणा सांगाजी का देहान्त संबत १५८४ में हुआ उससे कुछ पहिले भोजराज गुजरगये थे मीरांबाई राणारतनसिंघ (सं० १५८८।९२) के राजतक तो जिंदा थीं महाराणा उदैसिंघजी (सं० १५९२।१६२८) के राजमेंमरीं थे रणछोड़जीकी पूरी भक्त थीं साधों और सन्तोंका निहायत ही सतकार करती थीं जिससे महाराणा रतन सिंघ सख्त नाराज रहते थे और बहुत दुखदेतेथे यह बात मीरांबाई की कविता से भी जाहिर है ॥

उन्होंने अपनी उमर तेर की थी दरियाफ्त किया तो भक्तमाल, टाड राजस्तान, और, मीरांबाई के जीवन चरित, से ज़ियादा सही बातें मालूम हुईं जिनको हम इस किताब में आम फ़ायदे के लिए लिखते हैं ॥

॥ मीरांबाई की क़ौम और सुसुराल ॥

मीरांबाई जोधपुर के राठोड़[1] खानदान सेथीं और उदेपुरके सिसोदिया[2] खानदान में महाराणा सांगाजी के कँवर भोज के साथ व्याही गई थीं इनदोनों खानदानोंमें कदीम से संबंध होता चला आया है इस वास्ते इस सिलसिले को हम ज़रा ऊपरसे छोड़ते हैं और कुरसीनामोंसे उसको सुगमता देते हैं ताकि कुलहालात पढ़ने वालोंको अच्छी तरह से मालूम होजावें और जो ग़लतियां मीरांबाई के जमाने और उनके पति व पिता के नाम वग़ैरा में नावाक़िफ लोगों की लिखावटों से हो रही हैं दूर होजावें ॥

---

(१) राठौर—राष्ट्र+कूट=देश में सर्व श्रेष्ठ—क्षत्रियों का यह कुल अपनेको राम का वंशज मानता है। इस वंश का सर्व प्राचीन उल्लेख अशोक के दक्षिण में प्राप्त ईसा पूर्व २६४ के शिला लेख में मिलता है। तदनन्तर प्राप्त पांचवीं शताब्दी के शिलालेख में इस कुल के प्रथम राजा अभिमन्यु का उल्लेख मिलता है।

(२) सिसोदिया—शीर्षोदय—क्षत्रियों का यह कुल महाराज राम के पुत्र कुश की वंश परम्परा में माना जाता है। वर्तमान राज वंश की स्थापना बाप्पा रावल के द्वारा मानी जाती है, जिन्होंने अपने पराक्रम से सिन्ध के यवनों को हराया था तथा ७३४ ई० में मेवाड़ राज्य की स्थापना की थी।

१२०१ ई० में इनके वंशज राहप ने खोया हुआ चीतोड़ फिर से अपने अधिकारमें किया था तथा अपने पूर्वज बाप्पा द्वारा धारणकी गई 'रावल'की पदवी को 'राणा' में परिवर्तित किया था। यह पदवी पहले मंडोर के परिहार शासक मोकल की थी जिसे राहप ने पराजित किया था तथा यह पदवी छोड़ने के लिये बाध्य किया था।

१—रावचूडाजी राठौड़
२—रावरिमडलजी
३—रावजोधाजी
४—रावसूजाजी
दूदाजी मेड़ते में
५—कँवरबाघाजी
बीरमजी
रतनसिंहजी
६—रावगांगाजी
जैमलजी
मीरांबाई
१—राणालाखाजी
२—राणामोकलजी
३—राणाकूंभा जी
४—ऊदा
४ राणा रायमलजी
५—महाराणा सांगाजी
६—कँवरभोज राणा रतनसिंह राणा विक्रमाजीत राणाउदै सिंह
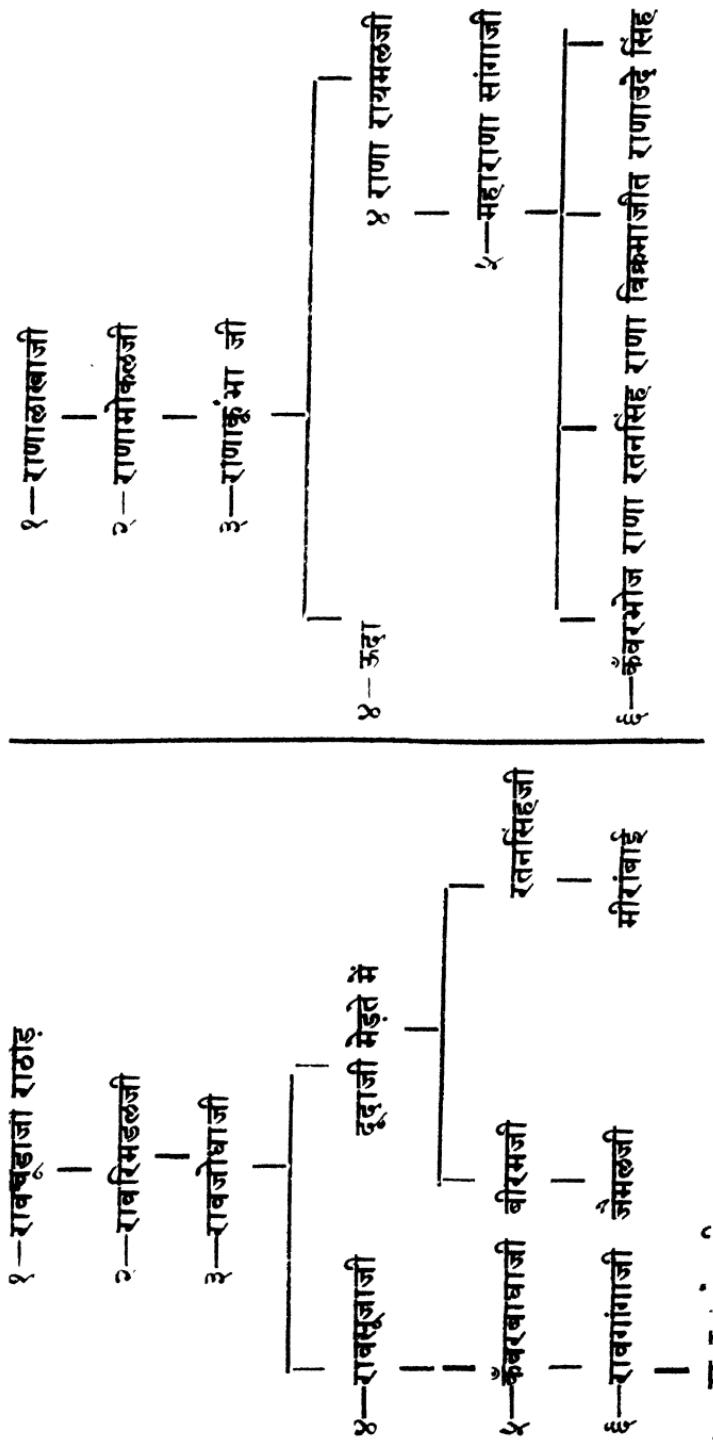
राठौर—सिसोदिया वंशों के वैवाहिक संबंध

राठौर राव चूंडा (१३६६ ई०)

- रणमल (मृत्यु, १४४३ ई०)
  - जोधा (लगभग, १४५३-६८ ई०)
    - दूदा
      - वीरमदेव (जन्म १४७७)
      - रतन सिंह (मृत्यु १५२७ ई०)
        - मीराबाई
    - शृंगार देवी (१४६८-१५०४ ई०)
- हंसाबाई (पत्नी, राणा लाखा) (मेवाड़) लगभग, १४१८
  - मोकल (१४२०-२८ ई०)
    - कुम्भा (१४३०-६८ ई०)
      - रायमल (१४७३-१५०६ ई०)
        - सांगा (१५०६-१५२८ ई०)
          - भोजराज

शृंगार देवी विवाह=रायमल

मीराबाई=भोजराज (जन्म १५०४ --विवाह, १५१६)

ये कुरसीनामे इधर राव चूँड़ाजी, और उधर राणांलाखाजी के नाम से शुरू होते हैं ये दोनों कौन थे और इनके आपस में क्या संबंध था यह सब नीचे के बयान से मालूम होगा

चूँडाजी[1] राठोड़ थे और उन्होंने सं० १४५२ (१३६५ ई०) में मारवाड़ की पुराणी राजधानी मंडोर को तुरकों से फतह करके जोधपुर के राज की नींव जमाई और अपनी बेटी हंसाबाई का व्याह[2] चीतोड़के राना लाखा जी[3] सीसोदिया से किया जो उस वक्त राजपूताने में अव्वल दर्जे के रईस थे और बड़े कँवर रिडमलजी[4] को भी उनके साथ कर दिया छोटे कँवर कानाजी को मरते वक्त मंडोर का मालिक किया[5] कानाजी के पीछे उनका भाई सत्ता गद्दी पर बैठा उसको रावरिडमलजी ने कि जिन्हें राणा लाखाजी ने अपनी बेटी

(१) चूँडा जी राठौर वंश के ग्यारहवें शासक थे।

(२) रिडमल की बहन हंसाबाई के साथ वृद्धावस्था में जब राणां लाखा ने विवाह किया था तो रिडमल ने शर्त कराई थी कि हंसाबाई का पुत्र ही मेवाड़ की गद्दी पर बैठेगा। ज्येष्ठ पुत्र चूँडा ने सहर्ष पद त्याग की प्रतिज्ञा की थी और इसीलिये स्वयं गद्दी पर न बैठकर हंसा के बालक पुत्र मोकल को उसने गद्दी दी।

ओझा-राजपूताने का इतिहास पृ० ५७७

(३) राणा लाखा (लक्षसिंह)का शासनकाल १३८२-१३९७ ई० तक। किन्तु ओझाजीके अनुसार इनका शासन काल १३८२ई० से १४१६ई० तक ठहरता है।

(४) रिडमल—रण+मल—रार+मल—राड+मल=रिडमल। मंडोवर की गद्दी पर १४२७ ई० में बैठे।

(५) राव रिडमल (रणमल)—मंडोवर के राठौर राव चूँडा ने अपनी गोहिल वंश की रानी पर अधिक प्रेम होने के कारण उसके बेटे 'काना' को जो उसके छोटे पुत्रों में से एक था राज्य देना चाहा। इस पर अप्रसन्न होकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रणमल (रिडमल) ५०० सवारों के साथ महाराणा लाखा की सेवा में आ रहा।

'ओझा'—राजपूताने का इतिहास पृ० ५७७

देकर बड़े दरजे पर पहुंचाया था अपने भानजे राणा मोकलजी[1] की फौज लाकर निकाल दिया फिर राणा मोकलजी को उनके १ खवासवाल चाचा मेरा ने मार डाला रावरिडमलजी ने मंडोर से जाकर मेरा को मारा और राणां कुंभाजी[2] को गद्दी पर बैठाया कुंभाजी की मां ने अपने बैटे की रखवाली के लिए रिडमलजी को चीतोड़ में रखलिया मगर वहां उनसे कुछ ऐसी हरकतें हुईं कि जिनसे राणा कुंभा, उनकी मां और, मेवाड़ के सरदारों, को यह खटका हो गया कि रावरिडमलजी हमको मारकर हमारा राज दबा बैठेगें इस लिए १ रात उन्होंने हल्ला करके सोते हुवे रावरिडमलजी को मारडाला जोधाजी मारवाड़ को भागे रानाजी की फौज ने पीछा किया और मंडोर भी उनसे छुड़ा लिया जोधा जी ने १२ बरसतक लड़कर संवत १५११ (१४५४ ई०) में सीसोदियों को मारवाड़ से निकाला और बाप के बैर में मेवाड़ का तमाम मुल्क लूटकर राणा जीको कुंभलमेर में घेर लिया तब राणाजी ने अपने बैटे ऊदाजी को भेजकर सुलहकर ली और जोधाजी का व्याह अपने खानदान में करके कुछ मुल्क भो उनको रिडमल जी की मूंडकटी में दे दिया ।।

रावजोधाजी[3] ने संवत् १५१५ (१४५८ ई०) में जोधपुर बसाया

(१) मोकलदेव— राज्यकाल (१३९७-१४३३ ई०) १४३३ ई० में अपने खवासवाल चाचा मेरा के द्वारा मारा गया।

(२) कुम्भा — शासन काल १४३३-६८ ई० तक। चितौर के कीर्ति स्तम्भ का निर्माण १४४० ई० में मालवा के यवन शासक पर विजय प्राप्त करने की स्मृति में इन्हीं के द्वारा किया गया था।

(३) जोधाजी — जन्म १४१५ई० मृत्यु १४८८ई०। इनकी पुत्री शृंगार देवी का विवाह महाराणा रायमल से हुआ था।

जोधाजी ने जोधपुर की स्थापना १४५९ ई० में की।

'गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा'

सं० १५२५ (१४६८ ई०) में राणां कुंभाजी के कपूत बेटे ऊदाने[1] राज के लालच से बाप को मार डाला और रावजोधाजी को इसडर से कि कहीं वे अपने बापरिडमलजी की तरह राणाजी का बदला लेने को तैयार न हो जावें अजमेर और सांभर के परगने दे दिये ॥

३ बरसपीछे मेवाड़ के सरदारों ने ऊदाजी को निकाल कर राणा रायमल को गद्दी पर बैठाया ॥

जोधाजी ने सं० १५४१ में (१४८४ ई०) में राना जी के कंवर सांगाजी [2] से अपनी २ पड़पोतियों की शादी की और सांगाजी ने कुछ अरसेपीछे अपनी बेटी रावजोधाजीके पड़पोते गांगाजीको दी%

जोधाजी सं० १५४५ (१४८८ई०) में ७२ बरस के होकर मरे उसवक्त चीतोड़ में राणां रायमलजी[3] राज करते थे ॥

जोधाजीके छोटे कँवरोंमेंसे बीकाजीने जोधपुर से ८० कोस उत्तर तरफ एक रेतीले मैदानमें बीकानेर बसाया जिसके नीचे अब एक बड़ी रियासत है❋ और दूदाजी[4] ने सं० १५१८में (१४६१ई०)जोधपुरसे ४०

(१) ऊदा (उदयसिंह प्रथम) शासनकाल (१४६८-१४७४ ई० तक) १४७४ई० में गद्दी पर से उतार दिया गया था और उसका भाई रायमल गद्दी पर बैठाया गया था। किन्तु ओझाजी यह घटना १४७३ ई० की मानते हैं।

(२) राणासांगा (संग्राम सिंह)-(ज०१४८२-१५२८ई० मृत्यु) गद्दी पर बैठे थे १५०९ ई० में।

नोट—इनके निम्नलिखित सात पुत्र तथा चार पुत्रियां थीं।

(१) भोजराज (२) कर्णसिंह (३) रत्नसिंह (४) विक्रमादित्य (५) उदयसिंह (६) पर्वतसिंह (७) कृष्णसिंह

कुंवरबाई, गंगाबाई, पद्माबाई, राजबाई

% राजपूतों में बहन की सौक की बेटी ब्याह लेते हैं।

(३) राणां रायमल राज्यकाल १४७३-१५०९ई० तक।

❋ बीकानेर वाले बीकाजी को बड़ा बेटा जोधाजी का बताते हैं और जोधाजी का मरना सं० १५४८ (१४९१ ई०) में मानते हैं।

(४) दूदाजी—जन्म १४४०ई० मृत्यु १५१५ ई०। इनका जन्म मंडोवर में हुआ था। इनकी माता का नाम था चांद कुंवर। इन्होंने मेड़ते का पुनरुद्धार १४६१ई० में किया था।

कोस पर अजमेर के रस्ते पर पुराने शहर मेड़ते[1] को नये सिरे से बसाया जो बहुत मुद्दतोंसे ऊजड़ पड़ा था और जिसको ठेटमें पंवार राजा मानधाता का बसाया हुआ कहते हैं बस यही जिला जो मेड़ते से अजमेर के पास तक चारों तरफ २०।२० कोस के गिर्दाव में फैला हुआ है मीरांबाई का देश कहलाता है॥

दूदाजी के बड़े बेटे बीरमजी[2] थे उनको राणा रायमलजी ने अपनी बेटी दी थी छोटे रतनसिंह जी थे इनको मेड़ते के १२ गांव कुड़की और बाजोली वग़ैरा गुज़ारे के वास्ते मिले थे उन्होंने वहाँ १ और गांव रतनास नाम बसाकर सं० १५६६ (१५०६ ई०) में रतनू जाति के १ चारणको शासन दे दिया जो अब तक उसकी औलाद के कबजे में है और जिससे रतनसिंह जी का नाम अऊत जाने पर भी बना हुआ है॥

मीरांबाई का जन्म व्याह और वैधव्य

रतनसिंह जी की १ इकलोती लड़की यही मीरांबाई[3] थीं जो गांव कुड़की में पैदा हुई थीं मगर यह अभी बच्ची ही थीं किमां मर

(१) मेड़ता—(महारेता या मान्धातृपुर या मेड़न्तक या मेरु+ता या मीर+ता) अजमेरसे चालीस मील पश्चिम और जोधपुरसे अस्सी मील पूर्व है। १५६५ई में मालदेव द्वारा इसका ध्वंस हुआ तथा यहीं १५६८ई० में 'मालकोट' की स्थापना की गई थी।

(२) वीरमदेव—(ज०१४७७-१५४३ई०)दूदाजीके ज्येष्ठ पुत्र थे। राणा रायमल की पुत्रीसे इनका विवाह हुआ था। १५२५ई० में ये अपने दो भाई रत्नसिंह तथा रायमल्ल सहित चार हजार सेना लेकर राणा साँगाकी ओर से कन्हवा युद्ध (बाबर के साथ) में गये थे जहां इनके दोनों भाई काम आ गये थे।

(३) मीराबाई—(अ) राणासांगा के ज्येष्ठपुत्र भोजराज के साथ इनका विवाह १५१६ ई० में हुआ था। (ब) हर बिलास सारडाके अनुसार इनका जन्म १४९८ ई० के आस पास माना जाता है। अन्य विद्वान १५०४ ई० मानते हैं। (स)प्राप्त सूचनाओं के अनुसार इनकी मृत्यु द्वारकापुरी में १५४६ ई० में हुई।

गई दूदाजीने यह हाल सुनकर मीरांबाई को अपने पास बुला लिया और परवरिशकी जब बड़ी हुई तो रतनसिंहजी ने उनका ब्याह सं० १५७३ (१५१६ ई०) में राणां सांगाजीके बड़े बेटे भोजराज से कर दिया और यह अपने दूलह के साथ चीतोड़ को गईं ॥

इस संबंध से इनके बापने अपनी समझ में वह बात सोची थी कि जिससे बढ़कर और कोई बात इनके वास्ते दुनियां में न थी यानी महाराणां सांगाजी के पीछे मेवाड़ के राज्य की महाराणी होना जो उसवक्त बहुत कुछ बढ़ा हुआ था लेकिन अफसोस कि उनके भाग में और ही कुछ बदा हुआ था यानी विधवां होकर उस राज्यसे विमुख रहना क्योंकि उनके पति ने कंवरपदे में ही कालबश होकर इनको और अपने पिता को दुखी कर दिया ॥

राजकुमार भोज[1] के मरनेकी मिती हमको न मारवाड़के दफतरों से मिली और न मेवाड़ के महकमें तवारीख से हाथ आई जिया-दातर अफसोस मेवाड़ के तवारीखी दफतरों पर है कि जिनमें इतने बड़े महाराणा के वलीअहद के मरने की तारीख नहीं है जो १ बड़ी बात थी इसके वास्ते हमसे और पंडित गौरीशंकरजी से बहुत लिखा पढ़ी हुई मगर कुछ पता नहीं लगा सं० १५७३ (१५१६ई०) और ८३ (१५२६ ई०) के बीचमें किसी बरस यह दुरघटना हुई है ॥

मीरांबाई ने इस तरह ठीक तरुणावस्था में संसार के सुखों से शून्य होकर अपनी बदकिसमती पर कुछ जियादा शोक संताप और विलाप नहीं किया बल्कि परलोकके दिव्य भोग और विलासों की प्राप्ति के लिए भगवत भगती में एकचित रत होकर इस असार संसार की स्वप्न तद्वत संपत्ति का ध्यान एकदम से छोड़ दिया यह भगवत भगती उनके खानदानमें पीढ़ियों से चली आती थी दूदाजी, बीरमजी, और जयमल जी, सब परम वैष्णव और भगवत भक्त कहे जाते हैं मेड़ते में चतुरभुज जी का मशहूर मंदिर राव दूदाजी का बनाया हुआ अबतक मोजूद है और उनकी औलाद के मेड़तिये

(१) भोजराजकी मृत्यु १५१८ई०-१५२३ई० के बीच हुई मानी जाती है।

राठोड़ जो हज़ारों ही हैं चतुरभुजजी का इष्ट रखते हैं और उनके नाम का १ रेशमी पवित्र सिरपेच के तौर पर पगड़ीके ऊपर बांधते हैं ॥

॥ मीरांबाई को गिरधरलालजी का इष्ट ॥

मीरांबाई को भी बचपन से ही गिरधरलाल जी का इष्ट हो गया था और वे उनकी मूरति से खेलते खेलते दिल लगा बैठी थीं और सुसराल में गईं जब भी उसको अपने साथ इष्टदेव की तरह ले गई थीं और अबजो बिधवाहुईं तो रातदिन उसी मूरति की सेवा और पूजा जी जान से करने लगीं ॥

गिरधरलालजी भी श्री कृष्णजी के सैंकड़ो नामों में से १ नाम है जो गोबरधन पहाड़ के उठाने से हुआ था यह बात मूरति में भी दिखाई जाती है कि बांये हाथ पर पहाड़ लिए बांकी अदा से खड़े हैं और दाहिने हाथ में बांसुरी मुंह से लगी हुई है ॥

॥ मीरांबाईके बिधवा हुए पीछे चीतोड़का बिगाड़ ॥

मीरांबाई का विधवा होना १ बड़ी आफ़त आने का अपशकुन राणाजी के खानदान के वास्ते था कि पहले तो महाराणा सांगाजी जो मालवे और गुजरात के बादशाहों पर कई बार जीत पा चुके थे और जिनका हुक्म ३ बड़े मुल्कों यानी राजपूताना गुजरात और मालवे में चलता था संवत १५८३ (१५२६ ई०) में बाबर बादशाहके ऊपर चढ़ाई करके लड़ाई हारे इस हार में मीरांबाईके बाप रतनसिंह जी और काका रायमलजी काम आए जो राणांजी की मदद के वास्ते जोधपुर के राव गांगाजी की तरफ से गये थे दूसरे बरस राणां जी फिर फौज सजकर लड़ने को जाते थे कि मुकाम एरच जिले बुंदेल-खंड अमलदारी बाबर बादशाह में बीमार होकर मर गये और फिर गुजरात के बादशाह बहादुर ने और उसके पीछे बाबर के पोते अकबर ने बारी २ से चीतोड़ फतह करके बहुत सी खूनखराबी की जिसका जिक्र आगे आता है ॥

मीरांबाईने ज़मानेके इस पलटेको देखकर दूसरा अजब तमाशा कुदरत का यह और देखा कि उनके ३ देवर रतन सिंह विक्रमाजीत और उदेसिंहमें से २ दावेदार राजके हुवे; रतन सिंह[1] तो चीतोड़में कातिक सुदी ५ सं० १५८४ (१५२७ ई०) को बाप की गद्दी पर बैठे और विक्रमाजीत रणथंभोर के किले में थे वे उसज़िले के मालिक हो गये दोनों की अनबन से यहां तक नोबत पहुंची कि एक दिन एक का वकील बाबर बादशाह के पास जाता था और दूसरे दिन दूसरे का और दोनों ही अपने २ स्वारथके लिये उसको रणथम्भोरके देनेका इक़रार करते थे और वह दोनों को ही दम देता था ।।

इस झमेले में राणा रतन ही जी से और बूँदी के राव सूरजमल से जो विक्रमाजीत और उदयसिंघ के मामा थे बिगाड़ होकर १ ने दूसरे को सं० १५८८ (१५३१ ई०) में राज बूँदी की सरहद पर जहां राणाजी शिकारके बहानेसे सूरजमल पर चढ़ कर गये थे मार डाला चीतोड़के सरदार राणाजी को दाग देकर रणथंभोरमें गये और वहां से विक्रमाजीत[2] को चीतोड़ में लाकर गद्दी पर बैठा दिया उस वक्त राणा विक्रमाजीत की उमर २० बरस से कम थी और मिज़ाज में छछोरपन ज़ियादा था इस सबब से सरदार सब नाराज़ हो गये और राणाजी ने मीरांबाई को भी बहुत तकलीफ़ दी क्योंकि उनकी भगती देखकर साधू और संत उनके पास बहुत आया करते थे यह बात राणाजी को बुरी लगती थी और वे बदनामी के खयाल से उन लोगों का आना जाना रोकने के वास्ते मीरांबाई के ऊपर बहुत सख़ती किया करते थे राणाजी की इस नाराज़ी के सबब का पता मीरांबाई के कई भजनों से भी लगता है उनमें से एक यह है ।।

(मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरा न कोई)
(दूसरा न कोई हो नाथ दूसरा न कोई)

---

(१) रतन सिंह का राज्यकाल ई०१५२८-ई०१५३१ तक।

(२) विक्रमादित्य-सांगा का चतुर्थ पुत्र। राज्यकाल १५३१ई०-१५३६ तक।

(साधन संग बैठ बैठ लोक लाज खोई)
(यह तो बात फूट गई जानत सब कोई)
(अँसुअन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई)
(यह तो बेल फैल गई इमृत फल होई)
(आई थी मैं भगत जान जगत देख रोई)
(लोग कुटम भाई बंद संग नहीं कोई)
॥ मेरे तो गिरधर गुपाल० ॥

॥ मीरांबाई को ज़हर ॥

आखिर जब राणाजी ने देखा कि रोक-टोक से कुछ फायदा न हुआ तो अपने मुसाहब की सलाह से जो बीजावर्गी जात का महाजन था मीरांबाई के मारने की तजवीज की पहिले फूलों की डालियों में सांप बिच्छू छुपा २ कर भेजे और फिर १ प्याला ज़हर हालाहल का तैयार करके उसी महाजन को दिया कि भाभीजी को पिला आवे कमबख्त महाजन ने मीरांबाई की ड्योढ़ी पर जाकर कहलाया कि-यह चरणामृत का प्याला राणाजी ने आपके वास्ते भेजा है मीरांबाई चरणामृत के नाम से खुशी २ उसको पी गईं जैसा कि किसी ने कहा है ॥

राणाजी बिख मोकल्यो दीजो मेड़तणीं के हाथ ।
चरणामृत कर पी गईं तुम जानो रघुनाथ ॥१॥

अर्थ—राणा जी ने ज़हर भेजा कि मेड़तणीं (मीरांबाई) × के हाथ

× सुसराल में रानियों का नाम नहीं लिया जाता है उनको बाप दादा के ख़िताब या वतन के नाम से पुकारते हैं इस क़ायदे से मीरांबाई को चीतोड़ में मेड़तणीं जी कहते थे यानी मेड़ते वाली और मीरांबाई की कौम भी मेड़तिया राठोड़ थी क्योंकि मेड़ते में बसने से दूदाजी की औलाद का उपनाम मेड़तिया हो गया था ॥

में दीजो (मीरांबाई) तो उसे चरणामृत करके पी गईं अब आगे है रघुनाथ जी तुम जानो ॥

इस ज़हर देने के बाबत साधों में १ पद मीरांबाई के नाम से गाया जाता है जो नीचे लिखा जाता है ॥

राणा जी ज़हर दियो हम जानी ।
अपने कुल को परदाराख्यो मैं अबला बोरानी ॥
राणा जी परधान पठायो सुन जो जी थे राणी ।
जो साधन को संग निवारो करूं तुम्हें पटरानी ॥
कोड़ भूप साधन पै वारूं जिनकी मैं दासी कहानी ।
हथलेवो राणा जी संग जुड़ियो गिरधर घर पटरानी ॥
मीरां को पति एक रामैयो चरण कमल लिपटानी ।
राणा जी ज़हर दियो हम जानी० ॥

मगर यह पद मीरांबाई का नहीं है साधों का घड़ा हुआ मालूम होता है जो मीरांबाई का होता तो वे कभी ये नहीं कहतीं —

जो साधन को संग निवारो तो करूँ तुम्हे पटरानी ।
हथलेवो राणा जी संग जुड़ियो गिरधर घर पटरानी ॥

क्योंकि न राणाजी उनको पटराणी बना सकते थे न उनका हथ-लेवा राणाजी से जोड़ा गया था यह अधर्म की बारता अज्ञानी साधों की जोड़ी हुई है ॥

अब आगे बाजे लोग तो यों कहते हैं कि उस ज़हर से मीरांबाई का प्रणान्त हो गया और मरते २ उन्होंने उस मुसाहब को यह सराप दिया कि तेरे कुल में औलाद हो तो माया न हो और जो माया हो तो औलाद न हो कहते हैं कि इस सराप का असर कुल कौम पर पड़ा जोधपुर में जो बीजावर्गी बनिये हैं वे भी यह कहते हैं कि मीरांबाई के सराप से अबतक हमारी औलाद और आमदनी में तरक्की नहीं होती है मेवाड़ के बीजावर्गी तो तीन तेरा हो गये हैं और जब ही से राजों में इस कौम का एतबार

जाता रहा है कि कहीं किसी बीजाबरगी को राज का काम नहीं मिलता और आम लोगों का भी जो ख़याल इनके बाबत है वह नीचे लिखी कहावत से जाहिर होता है ॥

बीजाबरंगी बानियो दूजो गूजर गौड़।
तीजो मिले जो दाहमो करे टापरो चौड़॥१॥

यानी—बीजाबरगी बनिया गूजर गोड़ और दाहमा ब्राह्मण तीनों मिल जावें तो घर चोपट कर देवें ॥

॥ मीरांबाई का मेड़ते में जाना और चीतोड़ पर आफ़त आना ॥

और कोई यों कहते हैं कि मीरांबाई को उस ज़हर का कुछ असर न हुआ बल्कि द्वारिकाजी में रणछोड़जी के मुँह से झाग निकले थे और वे मेड़ते में अपने काका रावबीरमजी के पास चलीं आईं अगर यह सच है तो मीरांबाई का चलाजाना भी राणाजी के और चीतोड़ के वास्ते बहुत बुरा था क्योंकि राणाजी का जो परिणाम हुआ वह बहुत भयंकर है और सारांश उसका यह है कि सं० १५८८ (१५३१ ई०) में गुजरात के बादशाह सुलतान बहादुर ने १ बहुत बड़े लशकर और तोपखाने के साथ जो चीतोड़ के किले की मजबूती तोड़ने के वास्ते २ बरस में १ फरंगी अफ़सर की तजबीज से रूम और फरंग के क़ायदे पर तैयार हुआ था, चीतोड़ के ऊपर चढ़ाई की जिसके बचाने के वास्ते बूँदी जोधपुर और मेड़ते के सूर-वीर हाड़े राठोड़ और मेड़तिये भी अपने २ मुल्कों से आकर सीसोदिया सूरमाओं में शामिल हुए और लड़ाई में भी उन्होंने वह बहादुरी दिखाई कि फरंगी तोपख़ानों की आग उनकी तलवारों के पानी से ठंढी हो गई तो भी राणा विक्रमाजीत की मां हाड़ी रानी करमेती ने जिसका नाम बाबर बादशाह ने अपनी किताब "तजुक-बाबरी" में पद्मावती लिखा है अपने बेटे को कम उमर और ना तजरुबेकार देखकर दूरअंदेशी से सुलतान के साथ सुलह कर ली और

उसको कुछ दे दिलाकर (१) रुखसत किया वह ओल में राणा जी के छोटे भाई उदेसिंहजी को भी लेता गया उसके औलाद न थी इस लिए उदेसिंह को लायक देखकर यह इरादा किया कि मुसलमान करके वलीअहद करे मगर उदेसिंह के साथी यह भेद पाकर उसको बेपूछे चीतोड़ में ले आए इससे बहादुर ने खफा होकर फिर बड़े जोर शोर से चीतोड़ के ऊपर हमला किया अब राणी करमेती ने बाबर बादशाह के बेटे हुँमायूँ बादशाह से मदद मांगी वह विक्रमाजीत की मददके वास्ते आता था कि मोलबियों ने उसको यह मुसलमानी मसला सुनाकर (कि जब १ मुसलमान बादशाह काफ़रों से लड़ रहा हो तो दूसरे मुसलमान बादशाह को उससे लड़नेका हुक्म नहीं है) गवालियरमें रोक लिया ॥

राणी करमेती जब इस तरफ़ से भी नाउमेद हुई तो उसने अपने बेटे विक्रमाजीत और उदेसिंह को बूँदी की तरफ निकाल दिया और खुद हथियार बांधकर सुलतान बहादुर से लड़ी और जिस दिन क़िला टूटा १३००० औरतों समेत जोहर करके आग में जल मरी

---

(१) गुजरात की तवारीख "मिरआत सिकन्दरी" में इस नजराने की यह तफसील लिखी है ॥

(१) मालवे के वे ज़िले तो सुलतान महमूद खिलजी से छीने गये थे ॥

(२) सुलतान महमूद खिलजी का जड़ाऊ परतला और ताज ॥

(३) कई कीमती जवाहिर जो राणा सांगा को महमूद खिलजी की हार के दिन हाथ आए थे ॥

(४) एक किरोड़ टके (जिसके ५ लाख रुपये मिरआत अहमदी में लिखे हैं)

(५) १०० घोड़े ॥

(६) १० हाथी ॥

बाद इस सुलह के सुलतान ने २७ शाबान सन् ९३९ (चेतबदि १५ सं० १५८८) को चीतोड़ से कूच किया और फौज भेजकर अजमेर और रणथंभोर के क़िले भी राणाजी के क़बजे से छुड़ा लिया ॥

राजस्थान
मुलतान
दिल्ली
बीकानेर
मथुरा
आगरा
नागौर
आम्बेर
जैसलमेर
पोकरण
मेड़ता
अजमेर
जोधपुर
जेतारण
रणथंभोर
भादराजुन
बूंदी
कोटा
अमरकोट
चित्तौड़
आबू
उदयपुर
पाटण
द्वारका
मांडू

श्री सुबोध मुखर्जी, एम० ए , सहायक ग्रंथागारिक-कलकत्ता विश्वविद्यालय, के सौजन्य से प्राप्त

मीरा के जीवन से संबद्ध मंदिर और किला के दृश्य
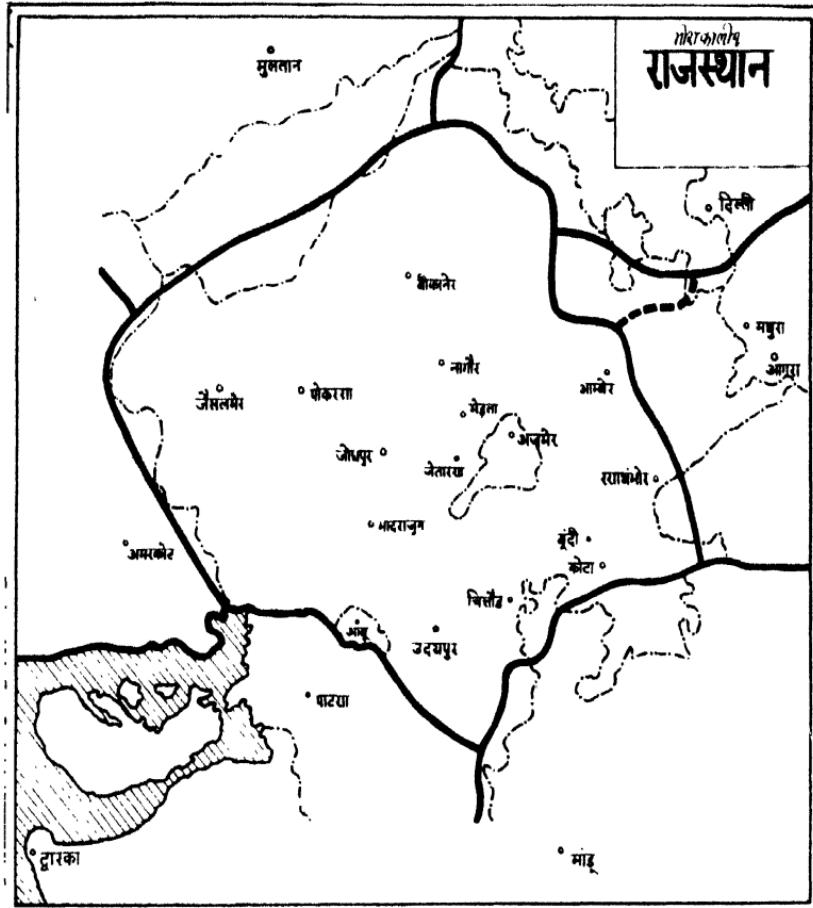
और ३०,००० राजपूत केसरिया कपड़े पहँनकर काम आए चीतोड़ लुट गया और मंदिर नापाक हुए ॥

थोड़े ही दिनों पीछे इस वारदात के ❀ हुमायु ने मंदसोरमें पहुंच कर बहादुर को हराया और राणा विक्रमाजीत को फिर चीतोड़ की गद्दी पर बैठाया लेकिन इतनी बड़ी उलट पलट देखने पर भी राणा जी ने अपना ढंग नहीं बदला और वे फिर वैसे ही अपने सरदारों और मुत्सद्दियों का अपमान करने लगे जिससे सब लोग उनसे बदल गये और उनके ताऊ पृथ्वीराज का खवासवाल बेटा बनबीर उनको मारकर वि० सं० १५९२ (१५३५ ई०)में गद्दी पर बैठ गया उसको वि० सं० १५९८ (१५४१ ई०) में राणा उदेसिंघजी[1] जो अब तक कूंभलगढ़ के किले में बैठे हुए उसकी फौज से लड़ते रहे थे निकाल कर मेवाड़ के मालिक हो गये ॥

॥ मीरांबाई मेड़ते में ॥

मीरांबाई मेंड़ते में रहती थी वीरमदेव और उनके कँवर जयमलजी[2] उनकी बहुत ख़ातिर करते थे वे जिस महलमें रातको गिरिधरलालजी की मूरति का शृंगार करके उसके आगे गाया बजाया और नाचा करती थीं वह अब चतुर्भुज जी के मंदिर में शामिल है और गिरिधरलालजी की वह मूरति भी इसी मंदिरमें मौजूद है ॥

मीरांबाईके पास साधसन्तोंकी आने जानेकी देख भाल मेड़ते में भी उसी तरहकी जाती थी जैसी कि चीतोड़में होती थी और जिसको वे

❀ बहादुर ने चीतोड़ ३ रमजान हि० सं० ९४१ (वि० सं० १५९२ चेत सुदो ५) को फतह किया था (अकबरनामा) और हुमायू ने बहादुर को मंदसोर से २० रमजान (बैशाख बदि ९) को मंडू की तरफ भगाया था (मिरआत सिकंदरी)

(१) उदयसिंह द्वितीय—राज्यकाल (१५३८ई०-१५७१ मृत्यु)
१५४०ई० में इन्होंने फिर से चित्तौर पर अधिकार कर लिया। वर्तमान उदयपुर की स्थापना इन्हीं ने की थी।

(२) जयमल—(जन्म १५०७-१५६७ई० मृत्यु) वीरमदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे।

अपने लिये बहुत तकलीफ़ समझती थीं मगर हमारी समझ में इससे ज़ियादा तकलीफ़ उनको ज़माने की गरदिश से मेड़ते में भी पहुंची होगी क्योंकि जो आफ़तें चीतोड़ पर आई थीं उनसे मेड़ता भी नहीं बचा था चीतोड़ टूटनेके पीछे राव वीरमजी और कंवर जयमलजीको भी मेड़ते में आराम से बैठना नसीब नहीं हुआ था हम इसका भी कुछ हाल यहां अवसर पाकर लिखे देते हैं ॥

॥ मेड़ते और मेड़तिये राठोड़ों का कुछ हाल ॥

मेड़ते का राज जोधपुर के राजों की आंखों में खटकता था राव मालदेवजी जो उस वक़्त जोधपुर के रईस थे और राणा सांगा का राज विगड़ जानेसे राजपूताने में बहुत ज़ोर पकड़ गये थे वीरम जी से पहले से नाराज़ थे यह नाराज़ी १ हाथी के ऊपर वि० सं० १५८६ (१५६२ ई०) में हो गई थी जब कि राव मालदेवजी के बाप गांगाजी ने अजमेर के सूबेदार दोलत खां को नागोर की सरहद में शकिस्त दी थीं और उसका हाथी भागकर मेड़ते में गया था जिसको वीरमजी ने पकड़ लिया था और मालदेवजी के मांगने पर भी उनको नहीं दिया था इस अदावत से राव मालदेव जी ने जब वि० सं० १५८८ (१५३१ ई०) में जोधपुर का राज पाया वीरमजी से मेड़ता छीन लेने का इरादा किया मगर सरदारों की सलाह न होने से चुप होकर दूसरे राठोड़ सरदारों को सर करते रहे वि० सं० १८६५ (१५३८ ई०) में उन्होंने भादराजूनके सिंधल राठोड़ों पर चढ़ाई की उसमें वीरमजी उनके शामिल हुए और बाद फ़तह के साथ २ जोधपुर में आए रावजी ने अवसर पाकर दोलत खां को मेड़ता फतह करने का इशारा लिखकर कुछ फ़ौज अपनी भी राठोड़ अखेराज बीदावत की अफसरीमें इस गरजसे भेजी कि मेड़ता लेने के पीछे खांन को वहां न रहने दे सो उसने ऐसा ही किया मगर बीरमजी के भतीजे (गांगासीहावत) ने उसको भी मेड़ते से निकाल दिया वीरमजी यह खबरें सुनकर पोशीदा जोधपुर से

निकले और गांगासीहावत से मेड़ता लेकर अजमेर पर गये दोलत खां शहर छोड़कर भाग गया रावमालदेव जी ने यह हाल मालूम करके वीरमजी से कहलाया कि मेड़ता तो तुम रक्खो और अजमेर हमको दे दो क्योंकि हम तुम्हारे बड़े हैं मगर वीरमजी ने नहीं माना और मेड़ते में आकर लड़ाई की तैयारी की उधर से रावमालदेव जी आए लेकिन बीरमजी लोगों के समझाने से अपने आदमियों को लेकर अजमेर चले गये राव मालदेवजी ने मेड़ता लेकर वहां के गांव अपने सरदारों को बांट दिये जिनमें से "कसबारियां" गांगा सीहावत के भाई सीसा को दिया था वीरमजी को सीसा के ऊपर इतना गुस्सा आया कि फौज लेकर उसके ऊपर गये वह भी केसरिया कपड़े पहिन कर मरने मारने पर तुल बैठा रावजी ने उसकी मदद पर राठोड़ जेता और कूंपा वग़ैराको भेजा जिनसे और वीरमजीसे रास्तेमें ही मुठभेड़ हो गई दोनों तरफ राठोड़ राठोड़ थे खूब तलवार चली वीरमजी ५ दफे घोड़े उठा २ कर रावजी की फौज में घुस २ गये और उन सरदारों की ११ बरछियां छीन २ कर अपने बाएं हाथ में जमां कर लीं जिसमें घोड़े की बाग भी थी आखिर राठोड़ भद्दा ने उनको ढकेल कर उस रण से निकाला और वे गुस्से में भरे हुए अजमेर को लोट गये रावजी की फ़तह हुई ५०० आदमी दोनों तरफ के मारे गये ॥

वि० सं० १५९६ (१५३९ ई०) में राव मालदेवजी ने वीरमजी को अजमेर से भी निकाल दिया वीरमजी आमेर की अमलदारी में चले गये नराणे के कछवाहों ने उनको पनाह दी मगर जब राठोड़ जेता और कूंपा रावजी के हुक्म से फौज लेकर वहां पहुंचे तो कछ-वाहों को तावे होते ही बन आया वीरमजी वहां से निकल कर फिर जहां २ आमेर के राज में गये वहां ही जेता और कूंपा भी जा मोजूद हुए तब वे आमेर का इलाका छोड़कर रणथम्भोर की सरहद में जा रहे जेता और कूंपा ने वहां भी जा लिया अब वीरमजी ने रोज २ की दौड़-धूप से तंग आकर उनको कह-

लाया कि लो मैं भी वहीं नहीं जाता आओ यहां ही निबड़ लेवें कूंपाजी ने कहा कि मैं भी तुमको मारकर ही जाऊँगा लेकिन जेता जी ने कूंपा जी को समझाया कि वीरमजी बड़े ठाकुर हैं और अपने भाई हैं कभी न कभी काम आवेंगे कूंपा जी ने उनका कहना मान लिया और वीरमजी को मंडू (मालवे) की तरफ जाने दिया ॥

इधर राव मालदेवजी ने वि० स० १५६८ (१५४१ ई०) में बीकानेर का राज रावजैतसीको मारकर ले लिया हुंमायू बादशाह जो बहादुरशाह गुजराती को भगाकर वि० सं० १५६३ (१५३६ ई०) तक गुजरात में रहा था वि० सं० १५६४ (१५३७ ई०) में शेरशाह पठान का फ़सादी मिटाने के वास्ते बंगाले को गया उस वक्त तो फ़तह पाई लेकिन स० १५६५ (१५३८ ई०) में शेरशाह से लड़ाई हार कर आगरे में आया शेरशाह ने वहां से भी उसको वि० सं० १५६७ (१५४० ई०) में सिन्ध की तरफ भगा दिया इस बादशाह गरदी में रावजी ने पालनपुर इलाके गुजरात से लेकर दिल्ली और आगरे की तलहटी तक अपना राज बढ़ा लिया और हुमायूं बादशाह को मदद देने का इक़रार करके मारवाड़में बुलाया हुमायूँ सं० १५९९ (१५४२ ई०)में जेसलमेर होकर जोधपुरके करीब तक आ पहुंचा था कि शेरशाहने रावमाल देवजीको गुजरात फ़तह करा देनेका लालच देकर हुमायूं की गिरफ़तारी का हुक्म भेजा हुमायुं यह सुनकर फ़ौरन सिन्ध को लौटा रास्ते में ऊमरकोट के पास कातिक शुदि ५ सं० १५९९ (१५४२ ई०) को अकबर बादशाह का जन्म हुआ ॥

मंडू के बादशाह शाहमल्लू खां से बीरमजी की कुछ मदद न हो सकी वह उससे खरच लेकर फिर रणथंभोर में आये और ४०० सवारों से आगरे में शेरशाह के पास गये वहां बीकानेर के राव-जैतसी के कंवर भीमसिंघ वगैरा पहले से राव मालदेवजी पर फरि-यादी गये हुए थे वीरमजी उनसे मिलकर बादशाह को रावजी के ऊपर चढ़ा लाए रावजी ८०००० सवारों से उसके मुक़ाबिले को अजमेर में आये बादशाह रावजी का यह ज़ोर देखकर आने से

पछताया और बीरमजी से कहा कि तुम तो कहते थे कि मैं रावजी को बातों से ही भगा दूंगा बीरमजी ने बादशाह की तसल्ली के लिए कंवर जेमल जी को औल में दे दिया और बादशाह से कई हजार "फीरोज़ियां" लेकर रावजी के लशकर में जो ४ कोस के फासिले पर था बेचने को भेजीं उस वक्त भाव तो १६) का था मगर बीरमजी के आदमी १७) की पड़त में ही दे आये फिर बीरमजी ने बादशाह से २ मुनशी मांग कर उनसे १०० फरमान रावजी के सरदारों के नाम लिखाये और एक-एक फरमान को एक-एक उमदा ढाल की गादी में सिलवाकर व्योपारियों को बुलाया और जिस ढाल में जिस सरदार के नाम का फरमान था उसका पता बताकर वह ढाल १ व्योपारी को दी और कहा कि रावजी की लशकर में जाकर जिस कीमत पर वह ले उसी को देकर आना दूसरे को मत देना इस तरह वे सब ढालें व्योपारियों को देकर राव जी के लशकर में भेज दीं, जहां उन सरदारों ने भी लड़ाई की जरूरत से खरीद लीं ॥

बीरम जी ने बाद इस काररबाई के अपने आदमी रावजी के पास भेजे और कहलाया कि हमारी तो ज़मीन आपने छीन ली है जिससे हम बादशाह के पास गए हैं लेकिन आप के सरदार क्यों मिल गये हैं जिन्हां ने बहुत सी अशरफियां रिश्वत में ले ली हैं इनकी ढालों की गद्दियां तो जरा आप देखें ॥

इस बात के सुनते ही रावजी का माथा ठिनका और उन्होंने उसी वक्त बाज़ार में आदमी भेज कर दरियाफ्त कराया तो बहुत सी फिरोज़ी मोहरें सर्राफों की दूकानों में मोजूद मिलीं और फिर सरदारों को बुला कर उनकी ढालें देखने के बहाने से ले लीं और गादियां चीर कर देखीं तो हर सरदार की ढाल में उसके नाम का फरमान निकला जिसमें लिखा था "कि हम तुम्हारे वास्ते इनाम भेजते हैं तुमने जो इकरार रावजी के पकड़ा देने का किया है उसको जल्दी पूरा करो" ॥

इन बातों से रावजी को यक़ीन हो गया कि ज़रूर कुछ दग़ा है

और फौरन सवार होकर सिवाने के पहाड़ों को चल धरे मगर जेता और कूँपा वग़ैरा बड़े २ सरदार जो उस फ़रेबसे बिलकुल बेखबर थे अपनी बदनामी दूर करने के वास्ते रजपूती की ग़ैरत से रात को बादशाह के लश्कर पर जाकर पड़े और हज़ारों पठानों को मार कर सब के सब बड़ी बहादुरी से मारे गये यह लड़ाई पोष सुदी ११ सं० १६०० (१५४३ ई०) को परगने मेड़ते और जेतारण की सरहद पर हुई थी।

बादशाह बाद फतह अजमेर में अपना थाना बैठा कर मेड़त में बीरम जी का क़बजा कराता हुआ जोधपुर गया और फ़ौज भेज कर राव जेतसी के बेटे कल्याणमल को बीकानेर रावजी के आदमियों से ख़ाली करा दिया फिर जोधपुर फ़तह करके आगरे को लौट गया ॥

बीरम जी वि० सं० १६०० (१५४३ ई०) के फागण में मर गये जेमल जी उनकी जगह बैठे ॥

वि० सं० १६०२ (१५४५ ई०) में शेरशाह मरा रावमालदेवजी ने पठाणों को मारवाड़ से निकालबाहर किया और सं० १६१० (१५५३ ई०) में शेरशाह के बेटे स्लीमशाह का मरना सुन कर अजमेर फतह करने को फौज भेजी लेकिन रांणा उदेसिंह ने उससे पहले वहां पहुंच कर अपना अमल कर लिया ॥

फिर रावजी ने जयमलजी को चाकरी में हाजिर होने के वास्ते कहलाया मगर उन्होंने साफ़ नांह दे दिया और रावजी के लश्कर को जो उनके ऊपर आया था सं० १६११ (१५५४ ई०) के वैसाख में लड़ कर भगा दिया राव जी ने असाढ़ बदि १३ को फिर फौज कंवरचन्द्र सेन जी की अफसरी में भेजी उसने मेड़ते को घेरा जयमलजी ने भी लड़ मरने की ठान ली थी लेकिन उसी मौक़े पर राणां उदेसिंहजी जो व्याह करनेके वास्ते बीकानेरको जाते थे वहां आ निकले और जयमलजी को समझा कर अपने साथ ले गये मेड़ते में राव जी का अमल हो गया ॥

इसी साल में हुमायूं बादशाह ने काबुल की तरफ से आकर फिर दिल्ली का तख्त सलीमशाह के बेटे मोहम्मदशाह से ले लिया

सं० १६१२ (१५५५ ई०) में अकबर बादशाह तख़्त पर बैठे उनके डर से हाजी खाँ पठान ने जो शेरशाह का १ बड़ा अमीर था अलवर की तरफ से आकर राणा जी के आदमियों से अजमेर ले लिया रावमालदेवजी ने सं० १६१३ (१५५६ ई०) में हाजी खां के ऊपर फौज भेजी उसने राणा उदेसिंह जी से मदद मांगी राणा जी पांच हजार सवार लेकर उदेपुर से आए राव जी की फौज हट गयी इस मौके पर फिर जायमलजी ने राणाजी की मदद से मेड़ते में अमल कर लिया इतने में ही राणा जी से और हाजी खां से बिगाड़ हो गया राणाजी ने हाजी खां पर चढ़ाई की अब हाजी खां ने रावमालदेवजी को अपनी मदद पर बुलाया रावजी ने १५०० सवार भेजे और खुद भी जोधपुर से रवाने होकर जेतारण में आये ॥

फागण बदि ६ मंगलवार १६१३ (१५५६ ई०) को लड़ाई हुई राणाजी हारे हाजीखां जीता राव मालदेव जी ने फागुण सुदि १३ को मेड़ते में पहुंच कर जयमल जी के महल गिराये और उनमें हल चलाकर खेती कराई और वहां मालकोट बनाना शुरु किया अकबर बादशाह ने हाजीखां की फतह का हाल सुनकर उसके ऊपर फौज भेजी हाजी खां ने रावमालदेवजी से पनाह मांगी रावजी ने उनको जेतारण में बुला लिया बादशाही फौज वहां भी आई हाजीखां गुजरात को चल दिया और जेतारण लुट गया ॥

सं० १६१६ (१५५६ ई०) में मालकोट तैयार हो गया तब रावजी ने आधा मेड़ता तो जयमलजी के भाई जगमाल को इनायत किया और आधा खालसे रक्खा और मेड़ते का नाम बदलकर नवानगर रख दिया ॥

जयमलजी बदनोर इलाके मेवाड़ में रहते थे जो राणाजी ने उनको दिया था मगर रावजी ने फौज भेजकर उनको वहां से भी

निकाल दिया उस वक्त, अकबर बादशाह अजमेर को आ रहे थे जयमलजी ने डीडवाने में जाकर अपना हाल अरज किया बादशाह ने मिरज़ा शरफुद्दीन को १००० सवारों से उनके साथ मेड़ता दिलाने को भेजा राठोड़ देवीदास ने जो रावजी के तरफ से मेड़ते का हाकिम था मालकोट में बैठकर मुकाबला किया मगर फिर राव जी के लिखने से सुलह कर ली जो मिरज़ा ने माल असबाब छोड़कर निकल जाने की शरत पर मंजूर की थी सो जगमाल तो उसी तरह निकल गया लेकिन देवीदास अपना असबाब जलाकर निकला जयमलजी ने मिरज़ा से कहा कि यह हुक्म अदूली करके जाता है आइन्दे भी नुकसान पहुंचायेगा मिरज़ा ने पीछा किया देवीदास पलटकर बड़ी बहादुरीसे लड़ा और काम आया मिरज़ा चेत सुदी १५ सं० १६१९ (१५६२ ई०) को मेड़ते में अमल करके नागोर गया वहां जयमलजी से और उससे बिगाड़ हो गया इसलिए जयमल जी उसका साथ छोड़कर उदयपुर को चले गये ॥

फिर कातिक सुदि ९ सं० १६१९ (१५६२ ई०) को रावमालदेव जी का इन्तकाल हो गया चंद्रसेन जी गद्दी पर बैठे उनसे अकबर बादशाह की फौज ने सं० १६२२ (१५६५ ई०) में जोधपुर छुड़ा लिया सं० १६२४ (१५६७ ई०) में अकबर बादशाह ने चीतोड़ के ऊपर चढ़ाई की राणा उदयसिंह जी जयमल जी को किला सौंपकर बाहर निकल गये जयमलजी ने ६ महीने तक खूब मुकाबला किया ॥

चेतबदि १० की रात को वे मशालों के उजाले में किले पर खड़े हुए मोरचों का बंदोबस्त कर रहे थे कि अकबर बादशाह ने देखकर बंदूक चलाई गोली जयमल जी के लगी वे उसी वक्त मर गये उनके मरते ही किले में जोहर होना शुरुअ हुआ तमाम औरतें जला दीं गईं राजपूत केशरिया कपड़े पहन कर मरने को तुल बैठे फ़त्ता सिसोदिये इस वेसिरी बाजी की अफसरी ली दूसरे दिन जब बादशाही फौज आई तो राजपूतों नें दरवाज़े खोल दिये और खूब दिल खोलकर जंगकी तमाम राजपूत किले पर कुरबान हो गये

बादशाही अमल १ सख्त खून खराबीके पीछे क़िले में हुआ बादशाह के दिल पर जयमल और फत्ता की बहादुरी का इतना कुछ असर हुआ कि उन्होंने दोनों की मूरतें बनवाकर आगरे के दरवाजे पर खड़ी की और लोगों में मुद्दत तक उनकी बहादुरी का चरचा होता रहा बलिक जयमल जी तो अब तक भी "चीतोड़ के जोद्धार और अकबर के गर्व गालनहार,, कहलाते हैं ❀ ॥

यह खाका जो हमने उस जमाने के कई तवारीखों का सार लेकर खंचा है इस बातको अच्छी तरहसे जताता है कि सं० १५९५(१५३८ई०) से लेकर सं० १६१८ (१५६१ ई०) तक कितने कष्ट का समय मेड़ते के वास्ते था और यह वही समय था कि जब मीरांबाई चीतोड़ छोड़ कर मेड़ते आईं थी नहीं मालूम की जयमल जी से मेड़ता छूटने के पीछे उन पर क्या गुजरी और वे कहां २ रहीं भगतमाल के करता नाभा जी मीरांबाई के समकालीन थे जो वे सही सही हाल लिखना चाहिते तो बहुत कुछ लिख सक्ते थे ॥

॥ मीरांबाई से जयमलजी को बरदान ॥

जयमल जी का नाम भी भगतों की सूची में सुनहरी अक्षरों से चमकता है वे जैसे बहादुर थे वैसे ही भगवत भगत भी थे भगत-माल में उनकी कथा है कहते हैं कि यह सदपदार्थ उनको मीरांबाई के सतसंग से प्राप्त हुआ था जब कि वे बचपन में उनके पास रहकर भजन और कीर्तन शामिल किया करते थे सं० १६१० (१५५३ ई०) में जब कि रावमालदेवजीकी फौज उनके ऊपर चढ़ाई करके लड़ाई हारी थी तो उसके बाबत ऐसा मशहूर हुआ था कि वे तो उस समय भगवत सेवा में थे और चतुर्भुज भगवान उनके भेस में नीले घोड़े पर

❀ लार्ड हैस्टिंग जब अंगरेजी अमलदारी के शुरूअ में जब हिन्दुस्तान के गवर्नरजनरल थे उन्होंने बदनोर के रावजी को जो जयमलजीके औलाद से थे लिखा था कि मैं तुम्हारें शूरवीर दादा जयमलजी की बहादुरी को मानताहूं और उनके नाम का अदब करता हूँ ।

सवार होकर लड़ने को गये और फतह की इसका भेद लोगों को उस उस वक्त मालूम हुआ कि जब आपका कुंडल रण में पड़ा मिला यह जगह अब भी कुंडल कहलाती है मीरांबाई ने जयमल जी को यह भी वरदान दिया था ॥

बहुत बधे तेरो परिवार। नहीं होय कजिया में हार ॥

यानी तेरा परिवार बहुत बढ़ेगा और लड़ाई में उसकी हार नहीं होगी सो ऐसा ही हुआ कि अब भी जयमल जी की औलाद मेड़तिये राठोड़ों में बहुत है और सब लड़नै मरने और मारने में मशहूर जैसा कि यह मारवाड़ी ओखाणा है "जान राऊदनै मरण ने दूदा" अर्थात् ऊदा की औलाद (ऊदावत राठोड़) बरात के, और दूदा की औलाद (मेड़तिये राठोड़) मरने के वासते भले हैं ॥

॥ मीरांबाई का देहान्त ॥

मीरांबाई का क्या परिणाम हुआ यह तवारीखी वृतान्त की तरह से तो कुछ मालूम नहीं है लेकिन भगत लोग ऐसा कहते हैं कि वे द्वारिका जी में दरशन करनेको गई थीं वहां १ दिन ब्राह्मणों के धरना देने से जिन्हें राणा जी ने उनको लौटा लाने के वास्ते भेजा था यह पद गाया ॥

मीरां के प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुड़न नही कीजे ॥

और रणछोड़ जी की मूरति में समा गई वह मूरति अबडाकोरजी इलाके गुजरात में है और उनका चीर अब तक भी भगवत भगतों को रणछोड़जी के बगल में निकला हुआ दिखाई देता है ॥

इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनकी मृत्यु द्वारिकामें हुई ॥

राठोड़ों का १ भाट जिसका नाम भूरदान है गांव लूंणवे परगने मारोठ इलाके मारवाड़ में रहता है उसकी जबानी सुना गया कि मीरांबाई का देहान्त सं० १३०३ (१५४६ ई०) में हुआ था और कहां हुआ यह मालूम नहीं ॥

॥ मीरांबाई के गुण ॥

मीरांबाई का नाम हिन्दुस्तान में बहुत मशहूर है और सब जगह उनकी भगवत भगती की बहुत तारीफ होती है जो कुछ तो साधू लोगों की फैलाई हुई है और कुछ उनके बनाए हुए भजनों से फैली है ॥

मीरांबाई में भगती के सिवाय और भी कई दिव्य गुण थे और वे जैसी बुद्धिमान और चतुर सुजान थीं वैसी ही ज्ञानवान भी थीं उन्होंने तीर्थ यात्रा के नाम से कुछ देशाटन भी किया था १ दफे मथुरा होकर बृंदाबन को गईं थीं वहां १ ब्रह्मचारी[1] बोला कि मैं स्त्री का मुँह नहीं देखता हूँ मीरांबाई ने कहा बाह महाराज अभी तक स्त्री पुरुष में ही उलझे हैं अर्थात् समदृष्टी नहीं हुवे हैं ॥

किसी पंडित ने राणा सांगा जी को शोकिया ख़त भेजा था उसमें १ जगह "सा" शब्द हींगलू से लिखा था जिसका सबब किसी के समझ में नहीं आया और न कोई उसका मतलब समझा बड़े २ पण्डित पच मरे निदान राणा ने वह कागज़ मीरांबाई के पास भेजा इन्होंने देखते ही कह दिया कि इस "सा" को लालसा पढ़ो लिखने वाला इस युक्ति से अपनी इच्छा ज़ाहिर करता है ॥

राणाजी और उनके सभासद मीरांबाई की इस विलक्षणता से बहुत राजी हुवे और उन्होंने तुरंत उन पंडित जी को लिख दिया कि जैसे आपको हमारे मिलने की लालसा है वैसे ही हमको भी आपके मिलने की लालसा है ।

❀ कुछ अटकल पच्चू बातें ❀

अब कुछ जिक्र उन अटकल पच्चू बातों का भी किया जाता है जो लोगों ने मीरांबाई के बाबत बनारखी हैं जैसे अकबर

---

(१) जीव गोस्वामी जिनके विषयमें माना जाता है कि श्रीचैतन्य की मृत्यु के बाद लगभग १५३३ ई० में नित्यानन्द की आज्ञा से वृन्दावन में ही निवास कर रहे थे, उनसे मीराबाई की भेंट असम्भव नहीं । सम्भवतः यही वे ब्रह्मचारी थे ।

बादशाह का राजनीति सीखने, और, तानसेन का गान, विद्या की तालीम लेने के लिये मीरांबाई के पास आना वग़ेरा २ * जिनका कुछ पता सही तोरपर अब तक नहीं लगा है ये शायद भोलेभाले भगतों की मीठी गप्यें हैं जिन्होंने मीरांबाई के सलूक और अहसानों का बदला ऐसी २ मनोरंजन कथाओं के फेलाने से दिया है॥

इसी तरह १ कथा मीरांबाई और गुशांई तुलसीदास जी के आपस में लिखापढ़ी होने की भगतों में चली आती है मगर दोनों के सम कालीन होने में कुछ शक है॥

मीरांबाई की जिन्दगीका पता सं० १६०० (१५४३ ई०) तक तो तवारीख से लगता है शायद पीछे भी जिन्दारहीं हों अकबर बाशाह का ज़माना १६१२ (१५५५ ई०) से शुरू होता है और गुशांई तुलसीदास जी ने रामायण बनाने का प्रारम्भ १६३१ (१५७४ ई०) में किया था और सं० १६८० (१६२३ ई०)में उनका इन्तकाल हुआ था॥

॥ कर्नल टाड की १ ग़लती ॥

कर्नल टाड ने अपनी तवारीख टाड राजिस्थान में मीरांबाई को राणा कुंभाकी राणी लिखा है और इसीपर से बाबूकार्तिक प्रशाद ने भी जीवनचरित में मीरांबाई का व्याह रानाकुंभा से रचाया है सो यह बिलकुल ग़लत है क्योंकि राणा कुंभा तो मीरांबाई के पति कुंवर भोजराज के परदादा थे और मीरांबाई के पैदा होने से २५ या ३० बरस पहले मरचुके थे मालूम नहीं कि यह भूल राजपूताने के ऐसे बड़े तवारीख लिखाने वाले से क्यों कर हो

* यही कथा बाबू कार्तिकप्रशाद ने भी मीरांबाई के जीवन चरित में लिखी है उनको इतना तो सोचना चाहिए था कि जो मीरांबाई उनके लेखानुसार वि० सं० १४७५ में जन्मी थीं वह अकबर बादशाह के समय तक क्योंकर जिन्दा रही होंगी जो वि० सं० १५९९ में पैदा हुवे स०१६१२ में तख़तपर बैठे और सं० १६६२ में मरे थे।

गई है मेरे मित्र पण्डित गौरीशंकरजी * ऐसा बिचार करते हैं कि "चीतोड़ के क़िलेपर कुंभशाम जी का मंदिर कुंभा राणा का बनाया हुआ है उसके पास १ और मंदिर है % जिसको मीरांबाई का बनाया हुआ बताते हैं इन दोनों मंदिरोंके पास पास होने से शायद टाडसाहिबने यह धोका खाया है मीरांबाई का नाम मेड़तनी है और महाराणा कूंभाजीका इन्तकाल सं० १५२५ ‡ (१४६८-ई०) में हुआ है उसवक्त तक मीरांबाईके दादा दूदाजीको मेड़ता मिला ही नहीं था इसलिये मीरांबाई राणा कूंभाकी राणी नहीं हो सकतीं"

*ये पंडितजी तवारीखके इल्म को खूब जानते हैं। प्राचीन अक्षरों के पढ़ने का इनको खूब अभ्यास हैं इन्होंने लिपिमाला नाम १ उत्तम पुस्तक भी बनाकर छपाई है जिसमें २५०० बरस पहिले तक के शिलालेखों के पढ़ने की रीति बहुत अच्छी तरह से बताई है प्राचीन संबत, प्राचीन अक्षर और प्राचीन अंक जो समय के फेरफार से बदलते रहे हैं सब उसमें लिखे हैं मुझको जो पुराने लेख मारबाड़ ओ ढूंढाड़ वगैरा मुल्कों में मिले हैं उनके पढ़ने और मतलब समझने में उनसे बड़ी कीमती मदद मिली है जिसका मैं निहायत अहसानमंद हूं और इस किताब के वास्ते भी मेरे सवालों के जवाब देनेमें उन्होंने बहुत मिहनत उठाई है जिसका धन्यवाद दिये बिना मैं इसको समाप्त नहीं कर सकता।

%यह मंदिर मैंने भी देखा है और १ मंदिर एक लिंग महादेवजीके पास भी उदेपुर से १० मील की दूरी पर मीरांबाई के नाम से मशहूर है उसको भी मैं देख चुका हूं मगर दोनों में कोई लेख नहीं है कि जिससे असल हाल मालूम हो ॥

‡ दूदा जी को संवत् १५२५ तक मेड़ता नहीं मिलना किसी मेवाड़ी पुस्तक से पण्डित जी ने जाना होगा। मारवाड़ी ख्याते तो सं० १५१८ में ही दूदा जी को मेड़ता मिला चुकती हैं ॥

॥ मीरांबाई की कविता ॥

मीरांबाई का नाम हिन्दुस्तान में बहुत मशहूर है और उनके बनाए हुए भजन और हरजस जगह २ गाये जाते हैं पर साधों ने खुद भी उनके नाम से बहुत से भजन बनाकर चला दिये हैं जिन में से अब असली और नकलीकी छांट करना बहुत मुशकिल है विरले ही कविता के पहिचान नें वाले पहिचान सकें तो सकें नहीं तो हरेक आदमी को कुछ पता नहीं लग सकता ॥

पण्डित गौरी शंकर जी लिखते हैं कि मीरांबाई ने रागगोविंद नाम १ ग्रंथ कविताका बनाया था और भी बहुत सी कविता की थी ऐसा भी कहते हैं कि जयदेव के गीत गोविंद की भी टीका की है मीरांबाई की कविता भगती से भरी हुई है उसमें ईश्वर का प्रेम और वैराग झलकता है उस कविता की वांणी कोमल मधुर और रशिक है ॥

॥ कुछ नमूना मीरांबाई की कविता का यह हैं ॥

१—दरद न जाने कोय अेरी मे तो दरद दीवानी मेरा ॥

घायल की गति घायल जाने ।
और न जाने कोय ॥ १ ॥
सूली ऊपर सेज हमारी ।
पोढ़न किस विध होय ॥ २ ॥
सुख संपति में सब कोई आवै ।
दुख विपता नहीं कोय ॥ ३ ॥
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर ।
बेद सावरियो होय ॥ ४ ॥

२—लियो है सांवरिये ने मोल माई में तो लियो है ।

कोई कहे सूंगो कोई कहे मूंगो ।
मैं तो लियो है हीरा सूं तोल ॥ १ ॥

कोई हलको कोई कहै भारी।
मैं तो लियो है ताकड़िये तोल ॥ २॥
कोई कहे छाने कोई कहै चोड़े।
मैं तो लियो है बाजते ढोल ॥ ३ ॥
कोई कहै घटतो कोई कहै बढ़तो।
मैं तो लियो है बराबर तोल ॥ ४ ॥
कोई कहै कालो कोई कहै गोरो।
मैं तो देख्यों हे घूंघट पट खोल ॥ ५ ॥
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर।
म्हारे पूरब जनम रो हे कोल ॥ ६ ॥

३— माई मैं तो सपना में परनी गोपाल ॥
हाथी भी लायो घोड़ा भी लायो ॥
और लायो सुख पाल ॥ १ ॥

॥ इति श्री मीरांबाई का जीवन चरित्र समाप्तम् ॥

परिशिष्ठ—क

मीरा की पदावलियों का इतिहास

मुंशी देवी प्रसाद जी ने ठीक ही कहा है कि उनके लिखनेके पहले तक मीराबाई का जीवन चरित्र जिस रूप में भी सामने आया, प्रायः अप्रामाणिक ही सा रहा। ठीक ऐसी ही दशा प्रायः देखने को मिली विविध मीरा पदावलियों में। आकार प्रकार में कई संग्रह काफी बड़े भी देखने में आये किन्तु किसी संग्रहकर्त्ता ने यह नहीं बताया कि उसके संग्रह का आधार क्या है। किन्तु किसी विशिष्ठ व्यक्ति के मानसिक विकास को तथा उसके जीवन-दर्शन को समझने के लिए जहां उसके व्यक्तित्व का परिचय अति सहायक सिद्ध होता है वहीं उसकी कृतियों का शुद्ध एवं परिष्कृत रूप भी कम आवश्यक नहीं होता।

धर्मप्राण भारत भूमि में मीरा बाई ने चार सौ साल पहले जन्म-ग्रहण करके भी जो लोकप्रियता प्राप्त की वह असाधारण है। भारत की विविध भाषाओं में उनके प्रचलित पदों के अनेक संग्रह प्राचीनतम काल से लेकर आज तक हुए हैं। विदेशी विद्वान और जिज्ञासु भी उनकी ओर बिना आकृष्ट हुए न रहे। टाड, विल्सन, ग्रियर्सन, मेकालिफ इत्यादि न जाने कितने नाम गिनाए जा सकते हैं जिन्होंने मीरा के विषय में अपनी विविध कृतियों में अनेक प्रकार की चर्चा की है। मध्य और आधुनिक काल के साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों ने भी अपने-अपने क्षेत्र में और अपनी-अपनी भावना के अनुसार मीराबाई के सम्बन्ध में चर्चा की है।

इस ओर हमें अपने देश के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता आदरणीय मुंशी देवी प्रसाद, महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा प्रभृति विद्वानों का चिर ऋणी रहना होगा, क्योंकि इतिहास

पक्ष की उलझी हुई मीराबाई की जीवनकथा को उन्होंने बहुत कुछ सुलझा डाला। किन्तु विविध भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत की गयी मीराबाई की दर्जनों पदावलियां जो संगृहीत होकर अब तक हमारे सामने आयी हैं उनसे सन्तोष नहीं होता। हिन्दी में अब तक लगभग सत्ताईस संग्रह प्रकाशित हुए हैं। गुजराती के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह 'काव्य दोहन' के अतिरिक्त छः और संग्रह देखने को मिले। बंगला के भी दो संग्रह प्राप्त हुये। इन सबों में पदों की संख्या छब्बीस से लेकर पांच सौ तक है; किन्तु इन विविध साहित्य प्रेमी जनों में से एक का भी यह दावा नहीं कि उसके संग्रह का आधार कहीं की, किसी समय की प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सारे संग्रह विविध स्थानों में प्रचलित जन साधारण द्वारा गाये जाने वाले विविध रूप और प्रकारके पदोंके ही संग्रह हैं। उत्तरोत्तर प्रस्तुत किये जाने वाले संग्रहों को देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि वे सब अपने पूर्व प्रकाशित संग्रहों के ही नवीन एवं काट-छांट युक्त परिवर्तित और परिवर्धित संस्करण मात्र हैं। स्थल-स्थल पर कुछ नवीनता लानेके लिये सम्पादक के स्वयंसिद्ध अधिकार का प्रयोग बिना किसी हिचकिचाहट के किया गया है। इन प्रयासों से यदि किसी अंश तक परिमार्जन या लालित्य, या सौष्ठव सिद्ध होता तो भी ठीक था; किन्तु इसका परिचय कम मिलता है। अधिकांश संग्रहों में "जनम मरण का साथी" की आवृत्ति मिलती है। यद्यपि डाकोर की प्रति में मूल पाठ है 'जणम जणम रो साथी।' संग्रहकर्त्तागण शायद उस हस्तलिखित प्रतिसे परिचित नहीं थे। 'जनम मरण' और 'जणम जणम' के पाठों में कितना अन्तर है, कहने की आवश्यकता नहीं।

यह माना कि हमारे देश की भक्तिकालीन विभूतियाँ अपनी कृतियों को लेखबद्ध करने की चेष्टा प्रायः नहीं किया करती थीं या शायद इने गिनों को छोड़कर उनकी यह परम्परा ही नहीं थी। किन्तु फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनके सन्देश, भक्त जनों के द्वारा ही सही, लेखबद्ध होकर सुरक्षित तो रहते ही थे।

मीराबाई ने भी शायद अपने पदों को स्वयं लेखबद्ध न किया होगा, किन्तु उनके द्वारा विविध अवसरों पर गाये गये उनके पद प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में देश के विविध भागों में और विदेशों के संग्रहालयों में अवश्य वर्तमान हैं। हमारे संग्रहकर्त्तावृन्द यदि इस सामग्री के उपयोग करने का उद्योग कर लेते तो कदाचित साहित्य की सेवा और अच्छी बन पड़ती और समीक्षकों की मीरा साहित्य विषयक समीक्षा भी अधिक प्रौढ़ और सुलझी हुई सामने आ सकती।

सन् १९३४ ई० २९ दिसम्बर को मुझे देश के पश्चिमी भाग बम्बई, बड़ौदा, द्वारिका, डाकोर इत्यादि की ओर भ्रमण करने का कलकत्ता विश्वविद्यालय की कृपा से अवसर प्राप्त हुआ था। यह यात्रा तीर्थ की भावना से कम, एक साहित्यिक पथिक के कौतूहल से ही अधिक की गई थी। डाकोर में मुझे कुछ विशिष्ट साहित्यिक व्यक्तियों के दर्शन करनेका सुयोग अपने मित्र श्री मायाशंकर दीनदयाल जी मेहता के सौजन्य से प्राप्त हुआ था। उन्हीं अनेक विशिष्ट व्यक्तियों में एक गुजराती दम्पति से भेंट हुई जिनका नाम था श्री गोवर्द्धन दास जी भट्ट। इनके पूर्वज द्वारकाधीश के मन्दिर के प्रधान सेवकों में से थे। ये स्वयं बहुत दिनों तक बम्बई की किसी इन्श्योरेंन्स कम्पनी की चाकरी में जीवन व्यतीत करके अब अवकाश ग्रहण कर चुके थे। पति और पत्नी भगवद्भजन और साहित्य चर्चा में ही अब अपना समय व्यतीत कर रहे थे। श्रीमती भट्ट इस समय भी अपनी संगीत पटुता के लिए प्रसिद्ध थीं। किसी ज़माने में वे स्वयं काव्य रचना भी करती थीं। दर्शनोन्मुख पाण्डित्य के साथ ही भट्टदम्पति की काव्य जिज्ञासा अद्भुत साधना थी। उनके संग्रह में गुजराती, मराठी, संस्कृत और हिन्दी की प्रकाशित और हस्तलिखित सुन्दर पुस्तकें तो थीं ही, उड़िया और तामिल के भी कुछ हस्तलिखित ग्रंथ वहां देखने में आये। उनका यह साहित्यानुराग सराहनीय था।

उन्हीं के संग्रह में मुझे दो पोथियां मीराबाई के पदों को देखने

को मिलीं। दोनों देवनागरी मिश्रित गुजराती लिपि में थीं। एक की तिथि सम्वत् १६४२ थी और दूसरी की जिसमें नागरी लिपि के अक्षर कम थे गुजराती के अधिक, स० १८०५ की थी। १६४२ वाली प्रति में केवल ६९ पद थे, किन्तु १८०५ वाली प्रति में १०३ पद संग्रहीत थे। उन्हीं के द्वारा मुझे सूचना मिली थी कि किसी समय उनके काशी प्रवास में वे डा० श्यामसुन्दरदास जी से भी मिले थे और उन्हीं के अनुरोध से डा० श्यामसुन्दर दास जी ने नागरी प्रचारिणी सभा काशी, की ओर से मीरा के पदों का एक आधार-युक्त संस्करण प्रकाशित करने की योजना की थी। दोनों प्रतियों की प्रतिलिपियां डा० श्यामसुन्दर दास जी को उनके द्वारा भेंट की जा चुकी थीं। साहित्य सम्मेलन के पिछले काशी अधिवेशन के समय डा० श्याम सुन्दर दास जी ने मुझसे भी भट्ट जी का जिक्र किया था। सम्वत् १८०५ वाली प्रति जो उन्हें श्रीयुत भट्ट जी के द्वारा भेंट की गई थी वह भी उन्होंने मुझे दिखाई थी, किन्तु सम्वत् १६४२ वाली प्रति उस समय आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल देख रहे थे। भट्ट जी की कृपा से मुझे भी उपर्युक्त दोनों ही संग्रहों की प्रतिलिपियां मिल चुकी थीं। इसके उपरांत मैं निरन्तर मीराके पदों की हस्तलिखित प्रतियों की खोज में व्यस्त रहा। सन् १९४२ तक लगभग सोलह हस्तलिखित संग्रह देखने में आये। चार काशी में, दो कानपुर में, दो रायबरेली में, तीन मथुरा में और शेष पांच उदयपुर और जोधपुर के निवासी कुछ साहित्यिक मित्रों के द्वारा। किन्तु ये सभी प्रायः अट्टारहवीं सदी के थे। विदेशों के संग्रहालयों के सूची पत्रों से वहां भी अन्य हस्तलिखित प्रतियों का पता चला किन्तु द्वितीय महायुद्ध की परिस्थिति तथा अधिक व्ययसाध्य व्यापार होने के कारण उनके या उनकी 'फोटो स्टैटिक' (Photo static) प्रतिलिपियों के दर्शन तो हो न सके केवल उनके विषय में जानकारी से ही सन्तोष करना पड़ा। उनकी तिथियों से भी ज्ञात होता है कि वे प्रायः सब अट्टारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की ही हैं।

इन विविध देशी और विदेशी हस्तलिखित प्रतियोंमें संगृहीत पदों की संख्या (डाकोर कीसर्व प्राचीन हस्तलिखित प्रति को छोड़ कर) प्रायः ६६ से लेकर १२४ तक है। राजस्थान और कानपुर की प्रतियों में भी पदों की संख्या १०३ से लेकर १२४ तक मिली; किन्तु उनमें से अधिकांश के प्रक्षिप्त तथा पिष्टपेषित होने की सम्भावना इतनी स्पष्ट है कि सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। कानपुर की दो प्रतियों में से एक जो मेरे परम मित्र बेहटा निवासी पंडित शिवदास जी अवस्थी के पास है अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक जान पड़ी। इसी प्रकार काशी के सेठ लाला गोपालदास के प्रसिद्ध संग्रहालय में मीरा की जो प्रति सुरक्षित है वह भी 'नागरी प्रचारिणी' के संग्रहालय की तीनों प्रतियों से (जिन्हें मैंने डा० श्याम सुन्दर दास जी के पास देखा था) अधिक प्रमाणिक जान पड़ी। उपर्युक्त कानपुर की तथा इस प्रति में एक सौ तीन-तीन पद हैं और आश्चर्य तो यह है कि दोनों ही प्रतियों में पदों का क्रम भी बिलकुल एक सा है। लिखावट और अक्षरों में भिन्नता काफी है, दोनों ही सम्वत् १७२७ की लिखी हुई हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि दोनों का मूलस्रोत एक रहा हो। सेठ जी के पूर्वज बड़े विद्याव्यसनी थे। उनके यहां संस्कृत और हिन्दी के अगणित ग्रन्थ-रत्न हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में सुरक्षित हैं। जिल्दें मखमली तथा अन्य प्रकार की सजावट से युक्त हैं। इन्हीं के यहां सूरसागर का एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह भी चार भागों में मख-मली जिल्द से युक्त देखने में आया और भगवद्गीता का एक अति प्राचीन सुरम्य चित्रों से युक्त गुटका भी देखा। मित्र वर शिवदास जी अवस्थी की प्रति में लिखने की अशुद्धियां अधिक हैं। इसीलिए पदावली एक होते हुए भी संग्रह में मैंने काशी की (लालागोपाल दास की) प्रति का ही उल्लेख किया है और जहां डाकोर की प्रति का उल्लेख है वहां प्राचीन (सम्वत् १६४२ वाली) प्रति से ही अभिप्राय है। इस प्रति में ६६ पद हैं। काशी की प्रति में इन पदों के अतिरिक्त ३४ पद और हैं।

डाकोर वाली प्रति में जो पद संगृहीत हैं वे प्रायः सभी प्रतियों में हैं, किन्तु विविध पाठभेदों के साथ। इस प्रति का विस्तृत इतिहास जो श्री भट्ट महोदय ने बताया था उसका सार कुछ इस प्रकार है कि मीराबाई जब मेड़ते से बृन्दावन की ओर चलीं तो उनके साथ कृष्ण भक्तों का एक बड़ा समूह तो था ही, किन्तु उनकी वह दासी जिसका नाम ललिता था, जो प्रायः बाल्यकाल से ही अनुचरीके रूप में छाया की तरह सुख और संभोग, दुख और विपत्ति में भी हर जगह उनके साथ रहती थी, रुग्णा होती हुई भी उनके साथ हो ली। यह अवस्था में उनसे कुछ बड़ी थी। यों तो वह राजकुल की दासी थी, किन्तु मीरा पर उसकी भक्ति, स्नेह, वात्सल्य और सख्य का एक अद्भुत मिश्रण था। उसकी रुग्णावस्था के कारण साथ न चलने के लिये उससे बहुत कुछ कहा गया किन्तु उसका विश्वास था कि मीरा से पृथक उसका जीवन असम्भव है। मीरा भी उसे सहसा छोड़ न सकती थीं। वृन्दावन पहुंचते ही वह केवल अपने दमे के रोग से ही मुक्त न हो गयी वरन् उसी के शब्दों में —

'जोग जतण ना म्हारो कोई स्याम तुम्हारी माया:
वृन्द्राबणरो दरसण पायां कंचन हो गयी काया।'

उसे तो कांचन काया मिल गयी; जीवन पर्यन्त वह मीरा के साथ ही रही। कहा जाता है कि रणछोड़ के मन्दिर में जिस दिन मीरा ने समाधिस्थ होकर अपना शरीर छोड़ा था उसकी पहली ही रात्रि में नव विवाहिता का सा शृङ्गार करके वह मीरा के सामने उपस्थित हुई थी और उन्हें अन्तिम प्रणाम करके समुद्र की लहरों में समा गयी थी। वह शायद संकेत था मीरा के लिये कि उनकी चिर-वेदना भी अपनी अवधि को प्राप्त कर चुकी है। तपस्या पूर्ण हो चुकी थी। चिर संयोग की घड़ी प्रभात की किरणोंका मार्ग जोह रही थी। यही वह दासी थी जो मीरा के पदों को लेखबद्ध करके सुरक्षित रखती थी। ललिता द्वारा लिखी गई वह प्राचीन प्रति रणछोड़के मन्दिर के खजाने में बहुत दिनों तक सुरक्षित रही। उस प्रति के लोग दर्शन

करते थे और उसकी पूजा करते थे। मन्दिर में उपासना के विविध अवसरों पर मीरा के पदों के गाये जाने की क्रमबद्ध अटूट परम्परा थी। एक भक्त ने अपनी भक्ति के उद्रेक में उस पोथी को सोने और जवाहिरातों से मढ़वा दिया था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के किसी मुसलमान शासक ने जब उस अंचल में उत्पात मचाया था और रणछोड़ जी के मन्दिर के खजाने को लूटा था उसी समय रत्नों और सुवर्ण के लोभ से प्रेरित होकर इस पोथी को भी उठा ले गया था; किन्तु उसी शासक की दूसरी पीढ़ी में नानालाल भगतमल नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति दीवान हुए। उनकी कृपा से सुवर्ण और रत्नों से विहीन यह पोथी किसी प्रकार सुरक्षित होकर रणछोड़ जी के मन्दिर को फिर प्राप्त हो गयी और शायद अभी तक वह वहां है। भट्ट जी की प्राचीन पोथी इनके पूर्वजों द्वारा इसी मूल प्रति के आधार पर सम्वत १६४२ में लिखी गयी। गृहस्थी के कुछ झगड़ों के कारण किसी समय भट्ट जी के पूर्व पुरुषों का यह समृद्ध और सम्मानित कुल दुर्दिनों का शिकार हो गया और इसीलिए शायद गृहस्थी की अन्य वस्तुओं के साथ संगृहीत बहु-मूल्य पोथियों की भी देख-रेख ठीक तरह से न हो सकी जिसमें भट्ट जी के ही शब्दों में न जाने कितने ग्रन्थ-रत्न सागर के गर्त्त में समा गये होंगे। जो कुछ बचा था वह मेरे सामने उपस्थित था। मीरा की यह प्राचीन प्रति (सम्वत् १६४२ वाली) सुरक्षित अवश्य थी, अक्षर भी भली भांति पढ़े जा सकते थे। लगभग ७½"×३½" के आकार की यह छोटी सी पोथी अपनी जीर्णावस्था का पूर्ण परिचय दे रही थी। पन्नों के कोने प्रायः टूटे हुये थे जिससे पदों की किसी क्रमबद्धता का निर्धारण अधिक सम्भव नहीं था। कुछ को छोड़कर प्रायः प्रत्येक पन्ने पर दो-दो पद थे।

विभिन्न संग्रहों में मीरा के नाम पर जो सैकड़ों पद चालू किये गये हैं यदि आंख खोल कर उनकी थोड़ी सी भी समीक्षा की जाय तो समझने में देर न लगेगी कि ये लगभग चार सौ प्रक्षिप्त पद अपने

अस्तित्व के लिये चार कोटि के भक्तों के ऋणी हैं। (१) कुछ पद मीरा के नाम पर विविध वैष्णव भक्तों के द्वारा गाये जाते हैं जिनका आधार सचमुच ही मीरा का ही कोई न कोई पद होता है। आधार-युक्त मूल पदावली की प्रायः दुष्प्राप्यता इस कोटि के भक्तजनों को बाध्य करती थी कि अपनी स्मरण शक्ति से ही काम लें। भक्तों में निरक्षरों की संख्या भी कम नहीं, और न सब समान रूप से मेधावी ही होते हैं। अतः स्थल स्थल पर कड़ियां भूल जाना असम्भव नहीं। किन्तु उच्चकोटि के भक्तों की आत्माभिव्यक्ति सरसता के साथ प्रायः सरल ही होती रही है। यह नैसर्गिक गुण इन भक्त जनों की अनायास सहायता कर देता है। मिलती-जुलती भूली हुई कड़ियां जोड़कर पद पूर्ण कर लिया जाता है और प्रचलित भी हो जाता है। कालान्तर में यही पद एक नवीन पद की सत्ता से विभूषित हो जाता है।

दूसरे भक्तजन उस कोटि के हैं जिनकी मेधा-शक्ति पहलों से भी कम है। वे अपने भावोद्रेक में दो-दो चार-चार पदों की भिन्न कड़ियों को जैसी, जो, जब याद पड़ी जोड़कर नये पदों की सृष्टि कर डालते हैं। कहीं कहीं अन्य प्रसिद्ध भक्तों द्वारा रचित प्रसिद्ध पदों की कड़ियां उठाकर पदों में जोड़ लेना और अन्त में 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' की छाप के साथ गा देना भी उनकी प्रथा है। जैसे—पद संख्या ११ 'मीरा माधुरी' "जाको रचत मास दस लागै" इत्यादि कबीर की प्रसिद्ध पंक्ति 'साईं को सीयत मास दस लागे' का ही अवतरण है। सूर तथा अन्य कृष्ण भक्तों की कड़ियाँ तो और भी आसानी से खप जाती हैं, क्योंकि मीरा भी तो कृष्ण की भक्त थीं। उदाहरण प्रचुर हैं, कोई संग्रह उठाकर देखा जा सकता है।

तीसरा भक्त समुदाय उपर्युक्त दोनों से भिन्न है। 'पंथ मार्ग पूछै को भाई, हरि को भजै सो हरि, पहं जाई, (व्यङ्गोक्ति, जाति पांति पूछै ना कोई, हरि का भजै सो हरि का होई) अभिन्नता की शुद्ध भावना से प्रेरित होकर तो कम, किन्तु शायद अपने सम्प्रदाय-विशेष की महत्व-घोषणा के मोह से अधिक, प्रेरित होकर यह भक्त-समुदाय

इसी चेष्टा में रहता है कि जैसे बने वैसे हर प्रसिद्ध भक्त को अपने ही मार्ग का या सम्प्रदाय का सिद्ध कर दिया जाय। उक्तियों में यदि इसके लिये कुछ थोड़ा सा फेर फार भी कर देना पड़े तो कोई पाप नहीं, कोई अन्याय नहीं। दलील उसकी यह होती है कि इस प्रकार भी भक्त की प्रसिद्धि में, उसकी लोकप्रियता में चार चांद ही तो लगते हैं। उस भक्त की लोक प्रियता बढ़ती या न बढती हो किन्तु इस प्रकार की कुचेष्टा मुमूर्षु जनों के मार्ग में कठिनाई अवश्य उपस्थित कर देती है।

चौथी कोटि का भक्त समूह इन तीनों से अधिक भयंकर है, क्योंकि वह विविध कोटि के पाण्डित्य का दावा करता है और पक्ष विशेष के अपने समर्थन के बल को भी जानता है। यद्यपि प्राचीन काल से ही पाण्डित्य का परम आदर्श सत्यान्वेषण माना गया है किन्तु यह पण्डित-समुदाय 'जो मैं कहूँ सो हक़ है' का उपासक है।

उपर्युक्त चारों प्रकार के भक्तों ने कम से कम मुद्रण-युग के पहले तक के भारतीय साहित्य में तो न जाने कितनी समस्याएं खड़ी कर दी हैं। मीराबाई भी इनका शिकार हुये बिना न बचीं। इनकी उक्तियों में उलट फेर करने की सुविधा अपेक्षाकृत और अधिक थी, क्योंकि इन्होंने स्वयं तो शायद कुछ भी लेखबद्ध किया ही नहीं। प्रचार देशव्यापी था इसलिये परिवर्त्तन-प्रिय भक्त समुदाय को भाषा की छूट मिली मिलायी थी, भावनाओं में रुचि और उद्देश्य के हिसाब से अदल-बदल कर लेना इन भक्तों का जन्म सिद्ध अधिकार था, फिर कसर क्यों रहती?

इनसे शिकायत भी क्या? किन्तु जिन विविध प्रकाशित मीरा के पदों के संग्रहों का उल्लेख आदि में किया गया है उनके यशस्वी संग्रहकर्त्ता दो चार को छोड़कर प्रायः लब्धप्रतिष्ठ विद्वान और विदुषियां हैं। उनके प्रयास देखकर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अपने-अपने संग्रहों की सामग्री प्रस्तुत करते समय उन्होंने अपनी समीक्षा शक्ति से भी काम लिया है। यदि संग्रहीत पदों के अध्ययन

में थोड़ी सी भी गवेषणात्मक बुद्धि खर्च की जाती तो मीराबाई विषयक काव्य, तत्व एवं संगीत-मर्म सम्बन्धी गवेषणा अधिक शुद्ध और पुष्ट सम्भव होती।

दृष्टान्त रूप से कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं। उपर्युक्त विविध प्रकाशित मीरा की पदावलियों में गुरु, राम, रमैया इत्यादि को सम्बोधित करके न जाने कितने पद मीरा के मत्थे मढ़ दिये गये हैं। 'श्याम' को 'राम', 'सांवलिया' को 'रमैया' में बदल देना कुछ कठिन नहीं। आवश्यकतानुसार श्याम या सांवलिया को सम्बोधित करके कहे गये मीरा के पदों में सन्त मार्गीय भावना की कुछ कड़ियाँ भी जोड़ दी गयी हैं। ऐसे प्रयासों को अनायास हो जाने वाली भूलों में नहीं गिना जा सकता। यह स्पष्ट चेष्टा थी मीरा-बाई को सन्त मार्गानुगामिनी सिद्ध करने की। ज़रा निम्नलिखित पद को देखिये—

माई मोरे नयन बसे रघुबीर,
कर सर चाप कुसुम सर लोचन ठाढ़े भये मन धीर,
ललित लवंग लता नागर लीला जब देखो तब रणधीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बरसत कंचन नीर॥

('मीरा माधुरी' पद, २५६)

यह पद एक या दो संग्रहों में नहीं, हिन्दी के तो न जाने कितने प्राप्त संग्रहों में देखा जा सकता है। गिरधर नागर की विरहिणी मीरा रघुवीर के विरह में व्याकुल चित्रित की गयी हैं। क्या यह भी नये सिरे से सिद्ध करना होगा कि मीरा की भक्ति 'कान्त भाव' की थी? कृष्ण को छोड़ कर यह कान्त भाव की भक्ति क्या मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र के साथ भी जोड़ी जा सकती है? उनकी विरहिणी जहां तक संसार जानता है केवल सीता ही हो सकती हैं—और थीं भी। शायद कुछ इनी गिनी बौद्ध-जातकों की कथाओं को छोड़ कर और कविवर केशव के काव्योन्माद के कुछ स्थलों को छोड़ कर अन्यत्र बालमीकि से लेकर 'साकेत' तक राम का चरित्र मर्यादापुरु-

षोत्तमता के परम पवित्र रूप में ही चित्रित हुआ है। मीरा की इस 'कान्त भाव' की भक्ति का नाता राम के साथ जोड़ने की चेष्टा न तो मीरा की भक्तिका उत्कर्ष ऊँचा उठता है और न राम की पतित-पावनता ही अधिक निखरती है। इसे तो यदि भ्रष्ट प्रयोग ही कहा जाय तो अनुचित न होगा।

प्रारम्भ में गुर्जर प्रदेशमें प्रचलित दासी ललिता की अनुश्रुति का जो उल्लेख किया गया है नितान्त आधार-शून्य नहीं जान पड़ता। भले ही हमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण इसका न मिले किन्तु साधारण बुद्धिजन्य कल्पना और अन्तर्साक्ष्य का संकेत तो अवश्य मिलता है, जो बहुत अंशों में इसकी पुष्टि कर सकता है। राजकुल की पुत्री और प्रसिद्ध राणावंश की वधू मीरा कितनी ही वैभव शून्य हों पर नितांत एकाकिनी शायद नहीं रह सकती थीं। साथ ही उनके कितने ही पदों में 'सखी' 'री' 'माई' इत्यादि सम्बोधन प्रयुक्त हैं। अवश्य ही ये किसी अन्तरंग सहचर की उपस्थिति प्रमाणित करते हैं। 'माई' सूचक उनके सम्बोधन पर कई बार विविध मेधावीजनों द्वारा आलोचनात्मक सन्देह प्रगट किया जा चुका है। इसका आधार मेवाड़ कुल का इतिहास है, जिसके अनुसार मीराबाई अपने बाल्यकाल में ही मातृ-विहीना हो चुकी थीं। अपनी माता को जीवन के परवर्त्ती काल में कहे गये पदों में स्मरण करना या सम्बोधित करना कुछ अप्रासङ्गिक सा जान पड़ता है। सखी वा सहचरी के सम्बोधन पर ऐसी कोई आपत्ति नहीं, यदि दासी ललिता की अनुश्रुति प्रामाणिक हो तो ये दोनों ही शंकाएं सुलझ जाती हैं। राजकुलकी मीरा, और वह भी भक्ति मार्गानुगामिनी, यदि अपनी चिर सहचरी ललिता दासी के साथ सखी का सा वर्ताव करती हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। साथ ही उस अनुश्रुति के अनुसार दासी ललिता अवस्था में उनसे कुछ अधिक थी। इस नाते स्नेहवश यदि 'माई' का सम्बोधन भी उसी के लिये हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। उपर्युक्त अन्तरसाक्ष्य के अतिरिक्त ललिता विषयक अनुश्रुति की प्रामाणिकता का एक पुष्ट

बहिर्साक्ष्य भी स्पष्टरूप में प्रसिद्ध भक्त ध्रुवदास जी द्वारा लिखित 'भक्तनामावली' में प्राप्त होता है। मीरा के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

"लाज छांड़ि गिरधर भजी करी न कछु कुल कानि।
सोई मीरा जग विदित प्रगट भक्ति की खानि॥
ललिता हू लइ बोली कै तासों हों अति हेत।
आनँद सो निरखत फिरै वृन्दाबन रस खेत॥

इस उल्लेख की तृतीय पंक्ति केवल 'ललिता' के व्यक्तित्व को ही स्थापित नहीं करती, वरन् 'तासों हों अति हेत' कहकर निस्सन्देहात्मकरूप से ललिता और मीरा के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को भी सिद्ध कर देती है। अतः गुर्जर प्रदेश में प्रसिद्ध ललिता विषयक अनुश्रुति पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता।

कुछ समीक्षकों ने आधार तो नहीं प्रगट किया किन्तु मीरा का पुराण प्रसिद्ध ललिता सखी के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध जोड़ दिया है और किसी-किसी ने तो उन्हें ललिता सखी का अवतार भी माना है। आश्चर्य नहीं कि दासी ललिता की परम्परागत अनुश्रुति ही इस भावना का आधार हो। इस अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए ऊपर कहा गया है कि मीरा के पद दासी ललिता के द्वारा ही लेखबद्ध किये गये थे। यदि यह ठीक है तो कल्पना करना अनुचित न होगा कि मीरा की यह दासी अपने संस्कारों के कारण शायद न भी सही, तो भी मीरा जैसी विश्व-विश्रुत भक्ति की साकार प्रतिमा के सहवास से विभिन्न असाधारण गुणों की अधिकारिणी कुछ अंशों में अवश्य ही हो गयी होगी। जिस मीरा की वाणी ने सैकड़ों वर्षों तक अगणित जनों को भक्ति रस से रंग डाला हो, वह अमर वाणी और मीरा का वह मोहक व्यक्तित्व दासी ललिता को न रंग सके यह सम्भव नहीं। डाकोर की प्रति में प्राप्त कुछ थोड़े से पदों में 'दासी मीरा लाल गिरधर' की छाप भी मिलती है। उन्हें देख कर सन्देह सा होने लगता है कि कदाचित ये पद मीरा के

न होकर दासी ललिता के हो सकते हैं, क्योंकि उन पदों की सामग्री प्रायः मीरा के व्यक्तित्व की ओर संकेत करती है। इनमें से कुछ तो मीरा के उसी प्रकार के लिखे हुए अन्य पदों के प्रतिरूप या दोहरे रूप से भी जान पड़ते हैं। जो कुछ भी सही, यह सारी समीक्षा हिन्दी साहित्य में तभी सम्भव हो सकेगी, जब हमारे साहित्य सेवियों के उद्योग और परिश्रम से मूल-सामग्री अपने विशुद्ध रूप में स्थिर कर ली जायगी।

भारत के मध्यकालीन प्रसिद्ध भक्तों और सन्तों की उक्तियों और रचनाओं के अध्ययन में विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनका निश्चित समय, उनकी निश्चित विचारधारा अथवा काव्यालोचना तथा उनके उक्ति-सौष्ठव इत्यादि का सर्वाङ्गीण अध्ययन सम्भव नहीं होता। क्योंकि उनमें से कुछ को छोड़ कर अधिकांश अपनी रचनाओं को प्रायः लेखबद्ध नहीं किया करते थे। इस कारण उन रचनाओं की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह रहता ही है और किसी प्रकार के निश्चित निष्कर्ष संशय से खाली नहीं रहते। ऐसी दशा में कुछ वारम्बार प्रयुक्त विशिष्ट विचारों के आधार पर उनके दृष्टिकोण के विषय में थोड़ा बहुत अटकल चाहे लगाया भी जाय, किन्तु भाषा विषयक अध्ययन तो नितान्त असंभव हो जाता है। मीरा के सम्बन्ध में भी यह कठिनाई कम नहीं। संग्रहों में प्राप्त उनके पदों के रूप यदि कोई देखे तो शायद उन्हें राजस्थान की मानने में भी संकोच होने लगे। दो चार टूटे-फूटे औंधे-सीधे, इधर उधर आने वाले राजस्थानी शब्दों और मुहाविरों को छोड़ कर व्रज-भाषा, अवधी और कहीं-कहीं तो खड़ी बोली की भी खिचड़ी मिलती है। कारण स्पष्ट है कि इन विविध संग्रहों के पद गली गली गाये जाने वालों से सुन कर बटोर लिये गए हैं। संग्रह-कर्त्ताओं की कठिनाई भी इस ओर कम नहीं थी। जब तक हस्त-लिखित प्रतियों का आधार लेने का कष्टसाध्य संकल्प न करते तब तक और चारा ही क्या था?

प्राय: उनके द्वारा की गयी तीन रचनाओं के नाम प्रसिद्ध हैं। (१) गीत-गोविन्द की टीका (२) नरसी जी रो मायरो और (३) राग-गोविन्द। इन तथाकथित प्रसिद्धिप्राप्त रचनाओं के केवल नाम ही मिलते हैं। अभी तक किसी ने शायद इन रचनाओं के पूर्ण या अंश के दर्शन भी नहीं किये। उनके पदों को छोड़ कर उपर्युक्त कृतियों के किसी प्रकार के रूप भी प्रकाशित नहीं देखे गये। मीरा बाई भक्तों की उस कोटि की थीं जो काव्य या सङ्गीत या किसी प्रकार की भी कला-साधना से कोसों दूर, केवल भक्ति साधना के निमित्त ही सङ्गीत या काव्य का सहारा लेती थीं। इसमें शायद दो मतों की गुञ्जायश नहीं। ऐसी दशा में उन्होंने किसी रचना विशेष के तैयार करने में अपने को लगाया होगा यह सन्देह का ही विषय है। 'नरसी जी रो मायरो' को तो कितने हो विद्वान आधार शून्य सिद्ध कर चुके हैं। अब रही बात 'गीत-गोविन्द की टीका' और 'राग-गोविन्द' की। मेरा अनुमान तो यह है कि उन्होंने भी गीत, गोविन्द के ही गाये थे और उनके उन्हीं गीतों को शायद भ्रमवश 'गीत गोविन्द की टीका' का नाम दे दिया गया होगा। क्योंकि यह 'राग गोविन्द' भी तो पूर्ण या अंश में पृथक प्रकाशित या अप्रकाशित अभी तक नहीं देखा गया।

परिशिष्ट—ख

'मीरा'—निरुक्त

अनेक वर्ष पूर्व शायद डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने ही 'सरस्वती' (भाग—४०, संख्या ३) में पहले पहल मीरा नाम की व्युत्पत्ति तथा उसके अर्थ एवं परम्परा इत्यादि की चर्चा छेड़ी थी। उसके उपरान्त मीराबाई पर लिखने वाले कितने ही विद्वानों ने इतनी लिखा पढ़ी की कि यह प्रश्न एक जटिल समस्या बन कर ही रहा। इस ओर सारी खोज का आधार (१) मीरा नाम की व्युत्पत्ति (२) उसका अर्थ और (३) उसके शुद्ध रूप के प्रयोग के विषय को लेकर ही है।

डा० बड़थ्वाल अनेक आधारों पर इसे फारसी शब्द 'मीर' से निकला हुआ मानते हैं। पुरोहित श्री हरिनारायण जी को लिखे गये पत्र में राजस्थान के इतिहास के प्रसिद्ध पण्डित श्री विश्वेश्वरनाथ जी रेउ लिखते हैं—"मीरा शब्द संस्कृत का नहीं है। मालूम होता है कि नागौर में मुसलमानों का अड्डा होने व मेड़ते के उसके निकट रहने से अथवा अन्य कारणों से, उनका प्रभाव राजपूतों पर पड़ा होगा ······ । मीरां शब्द फारसी में मीर का बहुवचन है और शाहज़ादों के अर्थ में प्रयुक्त होता है।" ('सन्तवाणी', पत्रिका वर्ष—१, अङ्क ११, पृष्ठ २४) प्रसिद्ध पण्डित और मीरा पर खोज करने वाले पुरोहित श्री हरिनारायण जी लिखते हैं "अरबी भाषा के अक्षरी केवल रूप (?) के अनुसार 'अम्र' बना। 'अम्र' से फ़ईल के वज़न पर अमीर बना। अमीर का संकुचित रूप 'मीर' हुआ, 'मीर' का बहुवचन और प्रतिष्ठा द्योतक 'मीरां' शब्द बना। (सन्तवाणी पत्रिका—अङ्क ११, पृष्ठ ४२) इस नाम की व्युत्पत्ति की खोज करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रह जाती। न वह मारवाड़ी शब्द है न यह हिन्दी

की किसी शाखा का शब्द है, फिर संस्कृत, प्राकृत वा पालीमें इसकी व्युत्पत्ति ढूंढ़ने की बात ही क्यों की जाय ? वृथा की चेष्टा रहेगी।" (सन्तवाणी—अङ्क ११, पृष्ठ ३२) आगे चल कर पृष्ठ ३१ और ३२ (सन्तवाणी, वही) में श्री शास्त्री जी अपनी अति प्राचीन १६२७ से की गयी खोज का हवाला देते हैं। उनका कहना है कि मीराबाई के नामकरण संस्कार का रहस्य उन्हें किसी (?) बहुत वृद्ध सज्जन के द्वारा प्राप्त हुआ है कि मीराबाई की माता को उनके 'पीहर की आई हुई एक बुढ़िया 'आया' ने सुझाया था कि सन्तान के लिये वे 'मीरां साहब अजमेरी की बोल्यारी' बोल दें और श्री शास्त्री जी का दृढ़ मत है कि इन्हीं मीरां साहब अजमेरी के प्रसाद से ही मीराबाई का जन्म हुआ था, और इसलिए उनका नाम मीरांबाई पड़ा। मीरां साहब अजमेरी की प्रतिष्ठा स्थापित करने में दीवान बहादुर श्री हरविलास जी सारडा के ग्रन्थ 'अजमेर' का भी सहारा लिया गया है। इस समस्त मान्यता की आलोचना भी आगे की जायगी।

गुजराती साहित्य के विद्वान पण्डित केशवराम काशीराम शास्त्री अपनी पुस्तक कवि चरित भाग -१ में मीरां की व्युत्पत्ति 'मिहिर' अर्थात् सूर्य से मानते हैं। प्रोफेसर नरोत्तमदास स्वामी प्राकृत और और अपभ्रंश व्याकरण के नियमों से 'मीरां' का मूल 'वीरां' शब्द में मानते हैं ('राजस्थानी—साहित्य,' उदयपुर, वर्ष १, अङ्क २)

हमें दुख है कि हम अपने महा प्रसिद्ध उद्भट विद्वानों से इस विषय में सहमत नहीं। यों तो किसी व्यक्ति के नाम के अर्थ या उसकी व्युत्पत्ति इत्यादि के सम्बन्ध में वादविवाद निरर्थक सा ही होता है, किन्तु यह समस्या जब इतना जटिल रूप धारण कर चुकी है तो इस ओर थोड़ी सी छानबीन हमारे पक्ष में भी आवश्यक हो गयी।

'मीरा' की व्युत्पत्ति का ठीक रहस्य समझने के लिए शायद अच्छा होगा कि पहले 'मेड़ता' शब्द पर विचार कर लिया जाय। 'मीरां-माधुरी' के लेखक श्री ब्रजरत्नदास जी पृष्ठ—३ पर लिखते हैं कि मेड़ता का शुद्ध नाम 'महारेता' है और यही महारेता बदला 'मेड़न्तक'

में और फिर हो गया मेड़ता। इसी का दूसरा नाम उन्होंने मान्धातृपुर भी बताया है। महारेता से मेड़ता की सिद्धि व्याकरण सम्बन्धी नियमों पर हो सकती है। किन्तु अच्छा होता श्री ब्रजरत्नदास जी मान्धातृपुर वाली अपनी मान्यता के ऐतिहासिक प्रमाण का थोड़ा सा उल्लेख कर देते। हम इसे महारेता नहीं मानते। अब तक के जितने भी प्रमाणयुक्त ऐतिहासिक लेख प्राप्त हुए हैं प्रायः सभी में माना गया है कि मेड़ता की स्थापना—पुनर्स्थापना नहीं—राव दूदा जी के द्वारा हुई थी, अतः हम तो इसी को आधार मानकर, नाम विषयक अपनी खोज करना उचित मानते हैं।

मेड़ता का उल्लेख करते हुए 'राजस्थान गजेटियर' (पृष्ठ---२३१) कहता है कि मेड़ता के चारों ओर जल का आधिक्य है (Water is plentiful at Merta there being numerous tanks all around the city)अतः जल के आधिक्यके बावजूद भी वहां मरुस्थलीकी कल्पना अर्थशून्य सी जान पड़ती है। और जब राव दूदाजी के सामने अपने लिये नयी राजधानी स्थापित करनेका प्रश्न उपस्थित हुआ होगा, तो निस्सन्देह ही किसी जलाशय के आसपास का स्थान ही उन्होंने पसन्द किया होगा।

'मेड़ता' शब्द का यदि व्याकरण के नियमों पर विवेचन किया जाय तो यह निम्न रूपों में सिद्ध हो सकता है।

(१) मेरु+त या मेरु+ता=मेरुता
या (२) मेरु + तक् = मेरुतक
(३) मीर + ता = मीरता।

मेरु शब्द का अर्थ संस्कृत कोष इस प्रकार मानता है,—पर्वत विशेष का नाम, माला या हार के मध्य में पोहा गया दाना या रत्न-विशेष। 'त' का अर्थ है—पृष्ठ भाग, वक्षस्थल, गर्भ, योद्धा, पतित व्यक्ति, म्लेच्छ, रत्न और अमृत। 'ता' प्रत्यय से संकेत माना गया है—गन्तव्य मार्ग सद्गुण, पवित्रता। प्रत्यय 'तक' संकेत करता है क्षुद्रता या लघुता का। इसी प्रकार एकाक्षरकोष में 'ता' शब्द लक्ष्मी

का प्रतीक माना गया है। इनके अनुसार अब यदि उपर्युक्त 'मेड़ता' के तीनों आधारों पर विचार किया जाय तो सिद्ध 'मेरुता' शब्द के विविध अर्थ कुछ इस प्रकार ठहरेंगे : -

(१) 'मेरुत' या 'मेरुता' का अर्थ होगा, किसी पर्वतका पार्श्वभाग या उसकी तराई या किसी पर्वत विशेष का गन्तव्य मार्ग।

(२) 'मेरुतक' का अर्थ होगा, छोटा पर्वत या पहाड़ी। मेड़ता के आस-पास कुछ छोटी पहाड़ियां अवश्य हैं, किन्तु उल्लेखनीय नहीं, अतः वहां न प्रश्न उठता है गन्तव्य पथ का और न पर्वत अर्थ रखने वाले मेरु शब्द की सार्थकता का। इसलिये उपर्युक्त मेरु-आधारित दोनों सम्भावनाएं मेड़ता नाम के मूल में उपयुक्त सिद्ध नहीं होतीं।

(३) तृतीय आधार है—मीर + ता = मीरता। 'मीर' शब्द का अर्थ संस्कृत कोष के अनुसार है—जलराशि, समुद्र, किसी पर्वत का कोई भाग, सीमा और पेय-विशेष। और एकाक्षर कोष के अनुसार 'ता' शब्द लक्ष्मी शब्दका वाचक है। हमारे साहित्यमें, क्या प्राचीन और क्या नवीन, लक्ष्मी धन की देवी तो हैं ही किन्तु सौन्दर्य, ऐश्वर्य इत्यादि भी उन्हीं के उपादान हैं। अतः यदि 'मीर' शब्द जलराशि अर्थात जलाशय और 'ता' युक्त 'मीर' सुन्दरतम जलाशय माना जाय तो आपत्ति की कोई गुञ्जायश नहीं। और इस प्रकार न केवल 'मेड़ता' शब्द की व्युत्पत्ति की ही समस्या हल हो जाती है, वरन उसकी पूर्ण सार्थकता भी स्पष्ट हो जाती है।

मीराबाई का नाम निस्सन्देह ही उपर्युक्त व्युत्पत्ति से सम्बन्धित है। 'मीर' वाच्य है जलाशय का। मेड़ते के चारों ओर सुन्दर सुन्दर झीलें हैं। सरिता और झील इत्यादि पर स्त्रियों के नाम रखने की प्रथा हमारे देश में नवीन नहीं। यदि राव दूदा जी ने अपनी पौत्री के अलौकिक सौन्दर्य से प्रेरित होकर मेड़ते की सुन्दरतम झील के आधार पर उसे 'मीरा' कहा हो तो आश्चर्य क्या? साथ ही जल हमारे देश में सात्विक भावना का सिद्ध उद्दीपन माना गया है।

इसी के अनुसार मीरा की जल के समान सौम्य सुन्दरता और निर्मलता देखकर राव दूदा जी ने उन्हें 'मीरा' कहा होगा। और यही शब्द बारम्बार सम्बोधन वाचक होने के कारण और परम आकर्षक बालिका मीराके लिये होनेके निमित्त केवल 'मीर' न रह कर 'मीरा' प्रसिद्ध हुआ होगा।

अब यदि उपर्युक्त पुरोहित श्रीहरिनारायणजी की मीरां शाह अजमेरी की दुआ वाली मान्यता की समीक्षा की जाय तो उसके स्वीकार करनेमें अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं (१)जिन 'वृद्ध' सज्जनने उपर्युक्त-सूचना पुरोहित जी को दी, वे कौन थे, उनके द्वारा प्रदत्त सूचना का क्या आधार था? जब तक यह स्पष्ट ज्ञात न हो तब तक वह किसी चलते फिरते मीरां शाह अजमेरी के भक्त की कल्पना भी तो हो सकती है। (२) श्री हरविलास जी मारड़ा तथा अन्य प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार एक मत हैं कि मीरां शाह शहाबुद्दीन गोरी का एक अमीर था; तारागढ़ का किलेदार बना दिया गया था और यहीं अपने चेले चापड़ों के साथ शूरवीर राजपूतों की तलवार का शिकार हुआ था। इसके लिये पुरोहित जी जैसे संस्कृत और हिन्दी के पंण्डित होने के अतिरिक्त फारसी और अरबी जानने का दावा करने वाले विद्वान 'पीर' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'पीर' और 'गाज़ी' में मूल अन्तर है। यह मीरन शाह पीर तो नहीं गाज़ी भले ही रहा हो। साथ ही यह भी इतिहास सिद्ध है कि १५६२ ई० की अकबर की अजमेर ज्यारत के पहले तक खंगसवार मीरां शाह की न कोई दरगाह बनी थी और न कोई प्रसिद्धि ही शायद थी। तब इनकी बरकत का नाता मीरा के जन्म से जोड़ना न जाने किस तर्क से सिद्ध किया जा सका है? क्यों कि मीरा का जन्म तो १४९८ से १५०३ के भीतर माना जाता है। एक बात और विशेष विचारणीय है कि ऐतिहासिक साक्ष्य पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि यह मीरां शाह कहलानेवाला खंगसवार मारा गया था कट्टर शत्रुकी तरह राजपूतों के द्वारा। तब राजपूत राजवंशों में, और विशेष कर उस मध्ययुग के

राजवंशों में जिनकी मित्र-शत्रु-विषयक भावनाएं जगत की कहानी बनी हुई हैं, एक मुसलमान शत्रु पक्षवाले की पूजा कैसे सम्भव हो सकती थी। जलाशय का महत्व, जहां स्वाभाविक रूप से जल की कमी हो, वहाँवालों के लिये—कितना और क्या होता है लिखने की आवश्यकता नहीं।

विविध सम्मानित विद्वानों को जो 'मीर' शब्द को एकान्त रूप से अरबी और फ़ारसी का ही मानते हैं जानना चाहिये कि भारत और अरब का सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन समय से है। विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में न जाने भारत की कितनी मान्यताएं अरब के निवासियों के द्वारा प्राचीनतम काल से ही अपनाली गयी थीं। 'मीर' शब्द अरबी से फारसी में आया। इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृष्ठ ५०५, में इसका विस्तृत उल्लेख है। वहां के समस्त साहित्य में मीर, अमीर, मिरज़ा, तुर्की भाषा का 'मीरी' सभी समान भाव से उच्चता और बड़प्पन के द्योतक हैं। इन शब्दों की जड़ संस्कृत शब्द 'मेरु' पर ही है जिसके अर्थों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सम्भव हो सकता है कि मुस्लिम सत्ता के साथ यह शब्द अपने अनेक अर्थों में फिर भारत में प्रचलित हुआ हो, किन्तु इसमें सन्देह की गुन्जाइश ही नहीं है कि संस्कृत का मेरु अपनी समस्त विशालताके आर्कषणको लिए हुए अरब, फारस और तुर्क देश में गया और वहां से 'मीर' बन कर फिर वापस आया।

उच्चारण पक्षसे यह शब्द 'मीरा' या 'मीरां' क्या होना चाहिये, इसपर भी कम विवाद नहीं। अन्य अनेक विद्वानोंके अतिरिक्त पुरोहित हरिनारायण जी ने 'सन्तवाणी' पत्रिका के उल्लिखित अङ्क के चालीस पृष्ठोंमें बड़ी भावनाके साथ न जाने कितने प्रमाण देते हुए 'मीरां' ही लिखे जाने का आग्रह किया है।

फारसी और अरबी व्याकरण के अनुसार निस्सन्देह 'मीरां' रूप 'मीर' का बहुवचन है। यह सभी को मान्य है। पुरोहितजी भी इसे दुहराते नहीं थकते। यह भी परम मान्य परम्परा है कि सम्मान

प्रदर्शनके लिये एक वचनके स्थान पर बहुवचनका प्रयोग किया जाता है। केवल अरबी या फारसी में ही नहीं, शायद संसार की भाषाओं में यह प्रचलन है। फारसी और अरबी में मीर या अमीर शब्द विविध सम्मानित व्यक्तियों और कवियों के लिये प्रयुक्त होता है। ये सभी सर्वथा आदरके पात्र हैं। अतः बहुवचनात्मक प्रयोग पूर्ण रूप से शास्त्र एवं परम्परा सम्मत हैं। किन्तु जहां एक ओर यह मान्यता प्रबल आधारों से युक्त है वहीं यह परम्परा भी कम प्रचिलित या गौण आधारों पर नहीं है कि निकटतम सम्बन्ध की भावना—एकवचन की कौन कहे, आदर की बात कौन पूछे—ईश्वर तक के लिये 'तू' और 'तेरे' की शब्दावली का प्रयोग करा डालती है, और उसी में दोनों को आनन्द आता है। भक्त-प्रवर ज्ञान-चूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी को उनके कितने भक्त अपनी चरम भक्ति और श्रद्धा को लिये हुए भी उन्हें केवल तुलसी कहते नहीं सुने जाते? मर्यादापुरुषोत्तम रघुकुलतिलक विष्णु के साकार रूप रामचन्द्र भक्तों के द्वारा केवल 'राम' ही कहे जाते हैं और 'रमैया जी' कह कर भक्त समुदाय वही भक्ति और वही श्रद्धा उनके प्रति रखता है जो आदरसूचक विशेषणों की झड़ी लगा कर उनके नाम का उच्चारण करने वाले रखते हैं। तब यदि मीरा को 'मीरा' कहा गया तो क्या अनुचित हुआ।

परिशिष्ट ग

मीरा के जीवनवृत्त का स्थानीय साक्ष्य

भारत में साधारणतया मध्य काल का इतिहास पूर्ण और विस्तृत रूप में प्राप्त नहीं है, यह इतिहास का प्रत्येक छात्र दुःख के साथ अनुभव करता है। उस काल के, साहित्यिक अथवा धार्मिक विभूतियोंके जीवनका इतिवृत्त तो और भी अधिक प्रच्छन्न है। उसके चारों तरफ अस्पष्टता और अपूर्णता का ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि किंवदन्तियों और कल्पनाओं के सहारे उन तक पहुंचने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। भक्त-शिरोमणि मीराबाई भी ऐसी ही एक महान् आत्मा ऐसे अन्धकारप्राय काल में अवतीर्ण हुईं।

जीवन की तिथि और मास की तो चर्चा ही क्या, संवत् में भी बड़ा मतभेद है। श्री शुक्लजी जब सं० १५६३ बताते हैं तो कुछ अन्य स्रोत सं० १५६७ और मारवाड़के कुछ लेखक सं० १५५५ ही स्वीकार करते हैं। अलनियाबास, ब्रजपुरा (मारवाड़), निवासी मेड़तिया चौहानों के कुलगुरुओं तथा धोलेराव के उनके भाट के रिकार्ड के अनुसार उनका जन्म ग्राम कुड़की, परगना जैतारण (मारवाड़), में बैसाख सुदी तीज सं० १५५५ को हुआ था। कुड़की गांव मेड़ता सिटी और मँगलिया-बास (अजमेर-मेरवाड़ा) दोनों ही स्थानों से १८ मील की दूरी पर अवस्थित है। यह इलाका पहाड़ी है, पहाड़ी पर ही वह छोटा-सा किन्तु सुन्दर और सुदृढ़ दुर्ग बना हुआ है जिसमें मीराबाई का जन्म हुआ था। मीराबाई का जन्म उस दुर्ग के किस कमरे अथवा भाग में हुआ था, आज इसका पता किसी भी स्रोतसे नहीं मिल रहा है। वहां के ठाकुर जोरावर सिंह जी, जो स्वयं बड़े सहृदय और इतिहाससे रुचि रखनेवाले महानुभाव हैं, इस विषयमें कोई प्रकाश नहीं डाल सके, क्योंकि वे इस कुल-परम्परा में, जिसमें मीराबाई का जन्म हुआ था, नहीं हैं।

वे चन्देला राजपूत हैं और मीराबाई जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधाजी राठौड़ की प्रपौत्री, राव दूदाजी की पौत्री तथा कुँवर रतनसिंह जी की पुत्री थीं। कुंवर रतनसिंह जी के मीराबाई के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं थी। अतः उनके पश्चात् सं० १७७३ में केशवदासथ् राजपूत जातिके कई सरदार मेड़ता परगनामें आए, लेकिन धीरे-धीरे उनका अस्तित्व भी एक दिन लोप हो गया और उसके पश्चात् वर्तमान जागीरदार जोरावर सिंह चन्देला कुड़की में वर्तमान हैं।

मीरा बाई की माता का नाम कुसुम कुँअर था। वे टांकनी राजपूत थीं। मीराबाई के नाना कैलन सिंह जी थे। उनकी माता जी के निवास स्थान का पता, काफी खोज करने पर भी, अभी तक नहीं मिल सका।

तीन वर्ष की अवस्था में उनके पिता जी (?) तथा दस वर्ष की अवस्थामें माताजी का शरीरान्त हो गया (?)। उनका शेष अविवाहित काल अपने बाबा राव दूदाजी के पास मेड़ता (जोधपुर) में बीता। मेड़ता में ही उनका विवाह संवत् १५७३ में मेवाड़ निवासी राणासांगा के पुत्र युवराज भोजराज जी के साथ हुआ। यह विवाह इनके पितृव्य ब्रह्मदेव जी तथा बाबा राव दूदाजी की देखरेख में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ, लेकिन ऐसा जनश्रुति के आधार पर सुना जाता है कि पाणिग्रहण से पूर्व ही मीराबाई ने श्री गिरिधर गोपाल को मन ही मन अपना पति चुन लिया था और इसीलिये उन्होंने बामहस्त से ही वैवाहिक विधि सम्पन्न की।

कुड़की के दुर्ग के रनिवास में एक छोटा सा मन्दिर है, जिसमें मीराबाई शालिग्राम जी का पूजन किया करती थीं और यह मंदिर उनके द्वारा ही स्थापित किया गया था ऐसा कहा जाता है। मंदिर काफी जीर्ण-शीर्ण सा पड़ा हुआ है। वर्तमान ठाकुर साहब ने उसकी साधारण रूप से मरम्मत करवा दी है जिससे वह पूर्णतया भूमिसात होने से बच गया है। मन्दिर के भीतरी भाग से उसके प्राचीन होने के चिन्ह लक्षित होते हैं।

मेड़ता स्थित चारभुजा के मन्दिर के पुजारी हरबक्ष जी मिश्री लालजी पराशर तथा अन्य वृद्धजनों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि इसी चारभुजा जी के मन्दिर में स्थापित शालिग्राम जी की मूर्ति वही है जिसका पूजन मीराबाई बाल्यावस्था में कुड़की के स्वस्थापित छोटे से देवालय में किया करती थीं। यह मूर्ति कुड़की के वर्तमान ठाकुर श्री जोरावर सिंह जी की छठी पीढ़ी के पूर्वज ठाकुर श्री लक्ष्मण सिंह जी द्वारा गढ़ के मन्दिर से हटा कर यहां स्थापित करवा दी गई थी, ऐसा सुना जाता है। गढ़ के ऊपरी हिस्से पर एक छोटा सा कमरा मन्दिर के ढंग का बना हुआ है जहां पहले यह मूर्ति रखी हुई थी। उस कमरे की छत तथा बनावट काफी प्राचीन प्रतीत होती है। मेड़ता के महल में जिसमें आज कल कचहरियाँ लगती हैं, तीन मंजिले पर एक छोटा सा आला बना हुआ है जिसके विषय में कहा जाता है कि मीराबाई उस आले में ज्योति स्थापित कर प्रातः-सायं पूजा किया करती थीं और उसके धूँए से वह आला आज तक काला है।

मेड़ता में एक प्राचीन दुर्ग 'मालकोट' के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें एक स्थान पर मीराबाई का जन्म स्थान बताया जाता है, किन्तु उस स्थान पर अब न तो कोई मकान ही है और न उसके ध्वन्सावशेष।

मेड़ता के विशाल मन्दिर के ऊपरी हिस्से पर भी एक छोटा सा कमरा है जहां मीराबाई भजन किया करती थीं और जो उनके समय का बना हुआ बताया जाता है। कमरे की छतों तथा दीवारों इत्यादि के देखने से वह इतना अधिक प्राचीन नहीं ठहराया जा सकता। इसके अतिरिक्त कुड़की ग्राम से लगभग ११-१२ मील रीयां एक छोटा सा ग्राम है जहांके ठाकुर साहब गोठड़ा से जो वर्तमान ठाकुर साहबके मुसाहिब हैं, यह ज्ञात हो सका है कि मीराबाई भ्रातृ-विहीन थीं।

ऐसा भी सुना जाता है कि मीराबाई प्रति दिन कुड़की से श्री शालिग्राम पूजन करने चारभुजा जी के मन्दिर के ऊपर वाले कमरे में आती थीं जिससे यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि कुड़की स्थित

मन्दिर के होते हुए भी वह आध पौन मील की दूरी पर नित्यप्रति क्यों आती थीं?—निश्चय ही वे पारिवारिक यन्त्रणाओंसे दुखी थीं। अपने पिता एवम् पति की मृत्युके उपरान्त मीराबाई जब अपने ससुराल में रहा करती थीं, उस समय भी वहां उनके पति के पश्चात् होने वाले शासक (विक्रम सिंह) आदि उन्हें काफी तङ्ग करते थे, जिसके कारण एक दिन अत्यन्त दुखी होकर उनको सदा के लिये गार्हस्थ्य जीवन को लात मारना पड़ा। इसके अतिरिक्त मीराबाई के जीवन के विषय में कोई प्रमाण यहां पर उपलब्ध नहीं होते।

—विद्यानन्द शर्मा, डीडवाना

परिशिष्ट—घ

मीराबाई और श्री चैतन्य

पूर्व भारत में श्री चैतन्य का जन्म १४८६ में हो चुका था और और उनका निधन १५३४ में हुआ। ये माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे। और अपने गुरु द्वारा भागवत् पुराण की टीका में प्रदर्शित राधाकृष्ण की भक्ति-कीर्तन के अनन्य उपासक और कुछ अंशों में प्रबल प्रचारक भी थे। अपने समय में इन्होंने विस्तृत देशाटन किया था। गुजरात और राजस्थान की ओर भी इनका जाना प्रसिद्ध है।

कृष्ण की भक्ति में तन्मय होकर मीराबाई भजन गाती थीं। यह भी कीर्तन का ही एक प्रधान रूप है। कृष्ण के प्रति इनका दृष्टिकोण भी यही था जिसका प्रचार श्री चैतन्य ने स्वयं किया था। इस प्रकार के साम्य को देख कर बहुत से लोगों की मान्यता है कि शायद मीराबाई श्री चैतन्य की शिष्या थीं। किंतु दोनों के काल को देखते हुये ऐसा मानना प्रमाणित नहीं होता। यह सम्भव अवश्य है कि श्री चैतन्य के द्वारा प्रचारित मार्ग ही इनका भी मार्ग रहा हो। धार्मिक अनुश्रुतियों और प्राप्त लेखों के आधार पर यह ठीक है कि मीराबाई वृन्दावन गयी थीं और वहां जीव गोस्वामीसे वे मिलीं थीं। जीव गोस्वामी श्री चैतन्य की ही परम्परा में थे। यद्यपि वे स्थायी रूप से वृन्दावन नहीं रहते थे। अपने समय के जीव गोस्वामी बड़े प्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं। भारत के पश्चिमोत्तर अञ्चल में श्री चैतन्य के उपदेशों का प्रचार इन्होंने बहुत अधिक किया था। यह सम्भव है कि मीराबाई को इनके सम्पर्क में आने के कारण श्री चैतन्य का सन्देश प्राप्त हुआ हो। किन्तु यह मानना कि मीराबाई कभी श्री चैतन्य से मिली होंगी, आधारयुक्त नहीं जान पड़ता। श्री चैतन्य के द्वारा आधारित भक्ति के मार्ग के अनुसार मीराबाई ने अनेक भजन लिखे हैं जो उनके विविध संग्रहों में देखे जा सकते हैं। उन पदों के आधार पर ही शायद लोगों को मीराबाई के चैतन्य के साथ मिलने का भ्रम होता है। किन्तु इसकी कोई मान्यता नहीं है।

डा० सुकुमार सेन, एम० ए०, पी० एच० डी०

परिशिष्ट—ङ

रैदास और मीराबाई

मीराबाई के अनेक पद संग्रहों में कुछ ऐसे भी पद (?) मिल जाते हैं जिनके आधार पर मान सा लिया गया है कि मीराबाई रैदास की शिष्या थीं। एक पद में पंक्ति मिलती हैं 'काशी नगरना चौक मा मने गुरु मिला रोहिदास'। इसमें यह संकेत है कि मीराबाई ने रैदास से दीक्षा काशी के चौक में ली थी।

किन्तु यह मान्यता आधार युक्त प्राप्त सूचनाओं की भित्ति पर ठीक नहीं उतरती। पहले तो जिन संग्रहों में इस प्रकार के मीरा के पद मिलते हैं वही विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन संग्रहों के सम्पादकों ने किन्हीं प्रमाणिक प्राचीन संग्रहों का आधार न लेकर केवल जहां-तहां मीरा के नाम पर गाए जानेवाले पदों का ही संग्रह कर लिया है। इसलिए ऐसे पदों की प्रामाणिकता यों ही खतरे में पड़ जाती है। दूसरी बात यह है कि ऐतिहासिक आधारों पर मीराबाई और रैदास के समय में इतना अधिक अन्तर है कि उनका एक दूसरे से गुरु-शिष्या के रूप में एकत्रित होना असम्भव हो जाता है।

मीराबाई का जन्म ऐतिहासिक सूचना के आधारों पर १४९८ ई० और १५०४ ई० के बीच में माना जाता है तथा मृत्यु १५४६ ई० में। रैदास की मृत्यु १५१६ ई० में हुई थी। ऐसी दशामें रैदाससे मीराबाई का दीक्षा लेना बहुत युक्तिसंगत नहीं ठहरता। मीराबाई आदि से अन्त तक नटनागर कृष्ण की ही उपासिका के रूप में हमारे सामने आती हैं, किन्तु रैदास का साधना-पक्ष ही भिन्न था। तब उनसे मीराबाई की दीक्षा का प्रश्न ही कैसा ?

मीराबाई का रैदास से काशी के चौक में मिलना तो और भी अधिक असंगत है। बा० ब्रजरत्नदासजी कहते हैं कि "काशी का चौक" अभी हाल का बना हुआ है। प्रायः दो शताब्दि पहले वहां तक महास्मशान समाप्त होता था और अब भी स्मशान विनायक फाटक के पास मौजूद ही है। मुगल काल में वहां अदालत स्थापित हुई थी, जो महाल अब भी पुरानी अदालत कहलाता है। चांदनी चौक का छोटा रूप 'चौक' भी मुगल काल से प्रचलित हुआ है।" तब मीरा का रैदास से 'काशी चौक में' मिलना ही कैसा ?

---

१ : (१) गुरु म्हारे रैदास सरन न चित सोई ॥

(२) खोजत फिरौं भेद वा थर को कोइ करत बखानी।
रैदास संत मिले मोंहि सतगुरु दीन्ह सुरत सहदानी ॥

(३) गुरु रैदास मिले मोंहि पूरे धुर से कल कलमी भड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके जोत में जोत अड़ी ॥

परिशिष्ट—च

मीरा-साहित्य

भारतीय उल्लेख

हिन्दी में : (प्राचीन)

श्री नाभा दासजी	—भक्त माल
श्री प्रियादासजी	—भक्तिरस बोधिनी टीका
श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद	—भक्तमाल की टीका
श्री ध्रुवदासजी	—भक्त नामावली
श्री नागरीदास	—नागर समुच्चय
श्री चरणदास	—शब्द
श्री दया बाई	—विनय पदावली
श्री महाराज प्रतापसिंह	—ब्रजनिधि ग्रन्थावली
श्री गोकुलनाथ	—चौरासी वैष्णवन की वार्ता

(आधुनिक)

श्री मुन्शीदेवी प्रसाद	—महिला मृदुवाणी
श्री मुन्शीदेवी प्रसाद	—मीराबाई की जीवनी
श्री ठाकुर शिवसिंह सेंगर	—शिवसिंह सरोज
श्री कार्तिक प्रसाद खत्री	—मीराबाई का जीवन चरित्र
श्री मिश्रबंधु	—मिश्रबंधु-विनोद
श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझा	—राजपूताने का इतिहास
श्री डा० श्याम सुन्दर दास	—हिन्दी साहित्य का इतिहास
श्री पं० रामचन्द्र शुक्ल	—हिन्दी साहित्य का इतिहास
श्री डा० रामकुमार वर्मा	—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
श्री महावीर सिंह गहलौत	—मीरा
श्री भुवनेश्वरजी मिश्र 'माधव'	—मीरा की प्रेम साधना

श्री ब्रजरत्न दास	—मीरा-माधुरी
श्रीमती विष्णुकुमारी मंजु	—मीरा-पदावली
श्री नरोत्तम दास एम० ए०	—मीरा-मन्दाकिनी
श्री मुरलीधर श्रीवास्तव	—मीरा बाई का काव्य
श्री ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'	—स्त्री कवि-कमुदी
श्री परशुराम चतुर्वेदी	—मीरा बाई की पदावली
श्री मीरा स्मृति ग्रन्थ	—बंगीय हिन्दी परिषद, कलकत्ता
कृष्णा तथा बांके बिहारी	—ब्रजचन्द्रचकोरी : मीरा
डा० कृष्णलाल	—मीरा
बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग	—मीरा की शब्दावली
पद्मावती शबनम	—मीरां, एक अध्ययन
,, ,,	—मीरा वृहत पद-संग्रह
कविराजा श्यामलदास जी	—वीर-विनोद
	मुहजोत नैणसी री ख्यात

गुजराती में :

श्री तनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी	—बृहत काव्य दोहन, भाग ७
श्री मनसुखराम एन० मेहता	—मीरांबाई
दयाराम	—मीरांचरित्र
श्री एस० एस० मेहता	—मीरांबाई नो चरित
श्री आचार्य ध्रुव	—काव्य तत्व विचार
श्री आनन्द शंकर ध्रुव	—नरसिंह अणे मीरां
श्री मणिक लाल चुन्नीलाल	—मीरांबाई
श्री कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी	—गुजराती साहित्य ना मार्ग-सूचक स्तम्भो

बंगला में :

भावानन्द स्वामी	—मीरा

अँग्रेजी में :

के० एम० मुन्शी	—मीरा, दी पोएटेस आफ गुजरात (ईस्ट एण्ड वेस्ट : अगस्त, १९१०)

श्री झावेरी —माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर

श्री हर विलास सारडा —महाराणा कुम्भ

श्री रामचन्द्र टण्डन —सांग्स आफ मीराबाई

श्री बांके बिहारी —दि स्टोरी आफ मीराबाई

पाश्चात्य उल्लेख

मानीयर विलियम्स —'रेलिजस् थाट एंड लाइफ आफ इन्डिया'।

कर्नल टॉड —'एनाल्स् आफ राजस्थान'।

बकलेन्ड —'डिक्शनरी आफ इन्डियन बायोग्राफी'।

कोलब्रुक —'एसेज़ आन दि रेलिजन ऐन्ड फिलासफी आफ दि हिन्दूज़'।

डासन —'क्लसिकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथालाजी'

डफ —'दि क्रोनालोजी आफ इंडिया'।

फोर्बस —'रासमाला'।

फ्रेज़र —'लिटररी हिस्ट्री आफ इन्डिया'।

हेस्टिंग्स् —एनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एन्ड एथिक्स्'।

हेबर —'नरेटिव आफ जर्नी थ्रू दि अपर प्राविन्सेज़ आफ इन्डिया'।

विलसन —'रेलिजस् सेक्ट्स् आफ हिन्दूज़'।

मैकनिकोल —'इन्डियन थीइज़म्'।

मार्गरेट मैंकनिकोल —'पोएम्स् आफ इन्डियन विमेन'।

मेकालिफ —'दि सिख रेलिजन' भाग-६।

,, —'दि लीजेंड्स आफ मीराबाई'।

विलबरफोर्स —'हिस्ट्री आफ काठियावाड फ्राम द अरलिएस्ट टाईम्स्'।

ग्रियर्सन —'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान'

परिषद के अन्य प्रकाशन :—

१ :	मीरा स्मृति ग्रंथ	—	(संपादित)	
		—	राजसंस्करण	१५)
		-	साधारण संस्करण	६)
२ :	भारतेन्दुकला	—	(संपादित)	४॥)
३ :	मानस में रामकथा	—	डा० बलदेवप्रसाद मिश्र	३)
४ :	कबीर परिचय	—	तारकनाथ अग्रवाल	॥=)
५ :	प्रेमचन्द्रप्रतिभा	—	कमलादेवी गर्ग	२)
			(साहित्य सौध द्वारा प्रकाशित)	
६ :	काव्यचर्चा	—	ललिताप्रसाद सुकुल	२॥)
			(साहित्य सौध द्वारा प्रकाशित)	
७ :	रामराज्य	—	राजबहादुर लमगोड़ा	१)
८ :	नवकथा	—	ललिताप्रसाद सुकुल	१।)
			(साहित्य सौध द्वारा प्रकाशित)	

जनभारती (साहित्यिक अनुशीलन और समीक्षा सामग्रीसे युक्त त्रैमासिक) — ४) वार्षिक